हमारे बालक-बालिकाएं

हमारे बालक—बालिकाएं

(भारत के लिए परिवर्द्धित और अनकलित)

(OUR CHILDREN—HINDI)

— लेखिका —

फ़्लोरा एच. विलियम्स

ऑरिएंटल वॉचमन पब्लिशिंग हाउस

पूना — १

प्रस्तावना

निस्संदेह माता-पिता को एक महान तथा महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है—और वह कार्य है सन्तान का शिक्षण। बड़ी हो कर सन्तान का अच्छा-बुरा निकलना घर के शिक्षण पर ही निर्भर होता है। यदि आरम्भ से ही उचित शिक्षण हुआ तो सन्तान अपने माता-पिता के लिये, अपने लिये तथा अपने देश और समाज के लिए सुख व लाभ सुख का स्रोत सिद्ध होता है; और यदि इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान न दिया गया अथवा इस की सर्वथा उपेक्षा की गई, तो निश्चित रूप से सन्तान आगे चल कर दुःख तथा कलंक का कारण बन जाती है।

जो माता-पिता अपनी इस जिम्मेदारी को समझते हैं, अपने इस दायित्व को पहचानते हैं और अपने कर्तव्य को जानते हैं, वे सर्वदा इस बात के इच्छुक रहते हैं कि इस कठिन कार्य में किसी-न-किसी का परामर्श मिले और किसी न किसी का सहयोग प्राप्त हो। अतः प्रायः मिलने-जुलने वालों से और घर में आए-गए से इस प्रकार की चर्चा हो ही जाती है कि क्या करें इस मोहन को तो झूठ बोलने की ऐसी लत पड़ गई है कि कुछ कहा नहीं जाता—अथवा यह सरल। तो बस एक जटिल समस्या बनती जाती है—कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें और क्या न करें—सात-सात दिन खेल-कूद में ही गवां देती है।

यह पुस्तक माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं की ऐसी ही उलझनों, ऐसी ही समस्याओं और ऐसी ही कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए लिखी गई है।

यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि प्रस्तुत पुस्तक में इस महत्वपूर्ण तथा गहन विषय से सम्बन्धित कोई भी बात नहीं छूटी, हां, इतना अवश्य कह सकते हैं कि इसे प्रत्येक रूप से उपयोगी बनाने में भरसक प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक दोष तथा प्रत्येक त्रुटि की विस्तृत विवेचना के अन्त में उन से सम्बन्धित एक-एक, दो-दो कहानियां भी जोड़ दी गई हैं—उदाहरणार्थ—"झूठ तथा काल्पनिक बातें" शीर्षक अध्याय के अन्त में एक ऐसी शिक्षाप्रद कहानी जोड़ी गई है जिस में एक बालक झूठ बोलने के प्रबल प्रलोभन का दमन करता है। सभी बच्चों को स्वाभाविक रूप से कहानियां अच्छी लगती हैं और यदि कहानियां उन्हें उचित ढंग से सुनाई जाएं, तो वे उन के अच्छे पात्रों की प्रशंसा करने और बुरे पात्रों के प्रति घृणा प्रकट करने से नहीं चूकते।

इन सब बातों के साथ-ही-साथ सरल व सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया है।

हमें पूर्ण आशा है कि जिस लक्ष्य से इस पुस्तक की रचना हुई है, यह उसे अवश्य ही पूरा करेगी।

—एफ. एच. डब्ल्यू

अनुवादक का नोट—यह पुस्तक मूल पुस्तक का स्पष्टानुवाद भी है और स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार रूपान्तर भी।

विषय सूची

आज्ञा पालन-पहली बात

अपने माता-पिता का कहना न मानने वाला बालक सर्वदा एक समस्या ही बना रहता है—ऐसी समस्या कि यदि इस का समाधान न किया जाए तो बालक का समस्त जीवन बिगड जाता है, वह बड़ा हो कर किसी काम का नहीं निकलता। शैशव तथा लड़कपन में ही इस समस्या का समाधान अधिक सरलता से हो सकता है; किन्तु यदि इस में विलम्ब हुआ या लापरवाही से काम लिया गया, तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है।

प्रकृति की व्यवस्था कुछ इस प्रकार की है कि मनुष्य का बाल्यकाल अधिक लम्बा होता है। इस के विपरीत बिल्ली का बच्चा शीघ्र ही प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो जाता है और इसी प्रकार कुत्ते का पिल्ला जल्दी से अपनी छोटी अवस्था को पार कर के बडा हो जाता है। किन्तु मनुष्य के बच्चे को बढ़ते-बढ़ते अधिक समय लग जाता है। अब प्रश्न उठता है कि ऐसा होता क्यों है। बात यह है कि मनुष्य अधिक समय तक जीवित रहता है इसलिये जब तक बालक में सफलतापूर्वक जीवन का भार उठाने की योग्यता और शक्ति न आ जाए, तब तक उस के शिक्षण की आवश्यकता बनी रहती है।

सर्वोत्तम अवसर

माता-पिता को बालक के शिक्षण के लिये सर्वोत्तम अवसर प्राप्त होता है; किन्तु अज्ञानता के कारण या अपनी कमजोरी और लापरवाही की वजह से इस काम को प्राय: नौकर-नौकरानियों अथवा शिक्षक-शिक्षिकाओं के भरोसे छोड़ दिया जाता है। किसी शिक्षक या शिक्षिका के लिए ऐसे-ऐसे तीस-चालीस बच्चों को कुछ सिखाना कोई हंसी-खेल नहीं, बल्कि यूं कहिये कि जब बच्चे आज्ञापालन करना न सीख जाएं, तब तक उन्हें कुछ सिखाना असम्भव होता है। इसी प्रकार उस घर में सुख-शांति ढूंढे भी नहीं मिलती, जहां आज्ञापालन का कोई महत्व न हो।

जिन बालक-बालिकाओं को आरम्भ से ही यह बात नहीं सिखाई जाती कि जीवन में पग-पग पर किसी-न-किसी नियम पर चलना पड़ता है, और किसी-न-किसी की आज्ञा का पालन करना होता है, वे यह सोच कर अपने दिल में बहुत प्रसन्न होते हैं कि जब "हम बड़े हो जाएंगे तो हमें किसी के

N. Ramakrishna

कहने पर नहीं चलना पड़ेगा—हम अपनी मर्जी के मालिक होंगे।" उन्हें आज्ञापालन का अप्रिय रूप दिखाई देता है, उन्हें केवल यही सूझता है कि दूसरों का कहना सुनने में अपनी मर्जी कुछ नहीं। इस अवस्था में उन को किसी प्रकार का अनुभव तो नहीं, इसलिये आज्ञापालन की अच्छाइयों को समझना उन के लिये लगभग असम्भव प्रतीत होता है। इस के विपरीत यदि माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिकाएं सोच-समझ कर अपने निजी अनुभवों द्वारा बालकों का शिक्षण करें, तो अवश्य ही कुछ-न-कुछ हो सकता है, विशेषकर उस दशा में जब कि शिशु के जन्म के समय से ही अनुशासन पर जोर दिया जाए।

कुछ माता-पिताओं और बालकों में सदा अन-बन रहती है। यही बात कुछ शिक्षक-शिक्षिकाओं और विद्यार्थियों के बीच भी पाई जाती है। परन्तु होता ऐसा उन्हीं परिवारों में है जहां माता-पिता उचित समय पर बच्चों को आज्ञापालन करना सिखाने से चूक जाते हैं और उन्हें ध्यान आता है उस समय जब पानी सिर पर से गुजर जाता है। धन्य हैं वे परिवार जहां बच्चे हंसी-खुशी अपने बड़ों का कहना मानें, जहां बालक-बालिकाएं अपने माता-पिता पर पूरा-पूरा भरोसा कर के उन्हें अपने दिल की एक-एक बात बता दें—उन से कुछ न छिपाएं, और जहां माता-पिता अपने निजी अनुभवों के आधार

पर अपने बच्चों का शिक्षण कर के उन्हें बहुत सी कठिनाइयों से बचा लें। माता-पिता को जीवन का पर्याप्त अनुभव होता है, वे जानते हैं कि कौनसे काम का परिणाम बुरा होगा और कौनसे का अच्छा, किस बात से हानि पहुंचेगी और किस से लाभ होगा। ऐसा बच्चा किसे प्रिय न होगा जो कोई नई बात करने से पूर्व अपने पिता या माता का परामर्श प्राप्त करने दौड़े; यदि उस से कहा जाए कि हां ठीक है तो करे और यदि कहा जाए कि ठीक नहीं, तो न करे। इस प्रकार बच्चा भी प्रसन्न रहता है और माता-पिता भी सुखी रहते हैं। अतः माता-पिता के उचित पथप्रदर्शन से बच्चों पर से बहुत सी आपत्तियां टल जाती हैं।

परन्तु ऐसे बालक के लिये क्या करें जो किसी का कहना न मानता हो ? बच्चों के सुधार में छोटे बच्चों के माता-पिताओं की सहायता करना सरल कार्य है; किन्तु उन माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं को सहयोग देना सरल नहीं जिन के बच्चों को कहना न मानने की बान पड़ गई हो। *इन दोनों ही प्रकार के माता-पिताओं तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं को सहयोग देना आवश्यक है।* अतः आइये पहले छोटे बच्चों की समस्याओं पर विचार करें।

आज्ञापालन एक आदत है।

आज्ञापालन एक आदत है। बालक को एक ही आदत पड़ सकती है—आज्ञा मानने की अथवा आज्ञा न मानने की। हमारे लिये यह कहना उचित नहीं कि अरे अभी तो बहुत छोटा है, ना-समझ है, अभी इस के सुधार की ऐसी क्या जल्दी पड़ी है। कारण, यही समय बालक के स्वभाव-निर्माण का होता है, अत. हमें इस विषय में टाल-मटोल नहीं करनी चाहिए। वैसा तो स्वभाव बन ही जाएगा—अच्छा नहीं तो बुरा सही।

कुछ बातें तो ऐसी हैं कि बच्चे के इधर-उधर घिसकने लगने के समय या उस से भी कुछ पहले ही सिखानी चाहियें। उसे सिखाया जाए कि कुछ विशेष वस्तुओं को न छुए, और जिन वस्तुओं को छूने से उस को हानि पहुंचने का डर हो, उन्हें उस की पहुंच से दूर रक्खा जाए। किन्तु कभी-कभी कुछ ऐसी वस्तुएं भी होती हैं जिन्हें कहीं दूर उठा कर रखना असम्भव होता है, उदाहरणार्थ अंगीठी को उठा कर आले में नहीं रक्खा जा सकता। कीमती फूलदान आदि को भी उस से बचा कर रखना चाहिए।

परन्तु हम माता-पिता की इस बात को भी अच्छा नहीं समझते कि वे हर वस्तु बालक की पहुंच से दूर रख दें जिसे बालक को छूना नहीं चाहिये। "बुककेस" का निचला खाना खाली रखना भी उचित बात नहीं। इस के विपरीत बालक को यह सिखाया जाए कि पुस्तकों को न छुए। हां, यह आवश्यक है कि जब तक वह यह बात भली भांति न सीख ले कि पुस्तकों को नहीं छूना चाहिये, तब तक उसे कमरे में घिसकने के लिये अकेला न छोड़ा जाए। जिस समय बालक को देखने-वाला कोई न हो, उस समय उसे किसी सुरक्षित स्थान में रक्खा जाए।
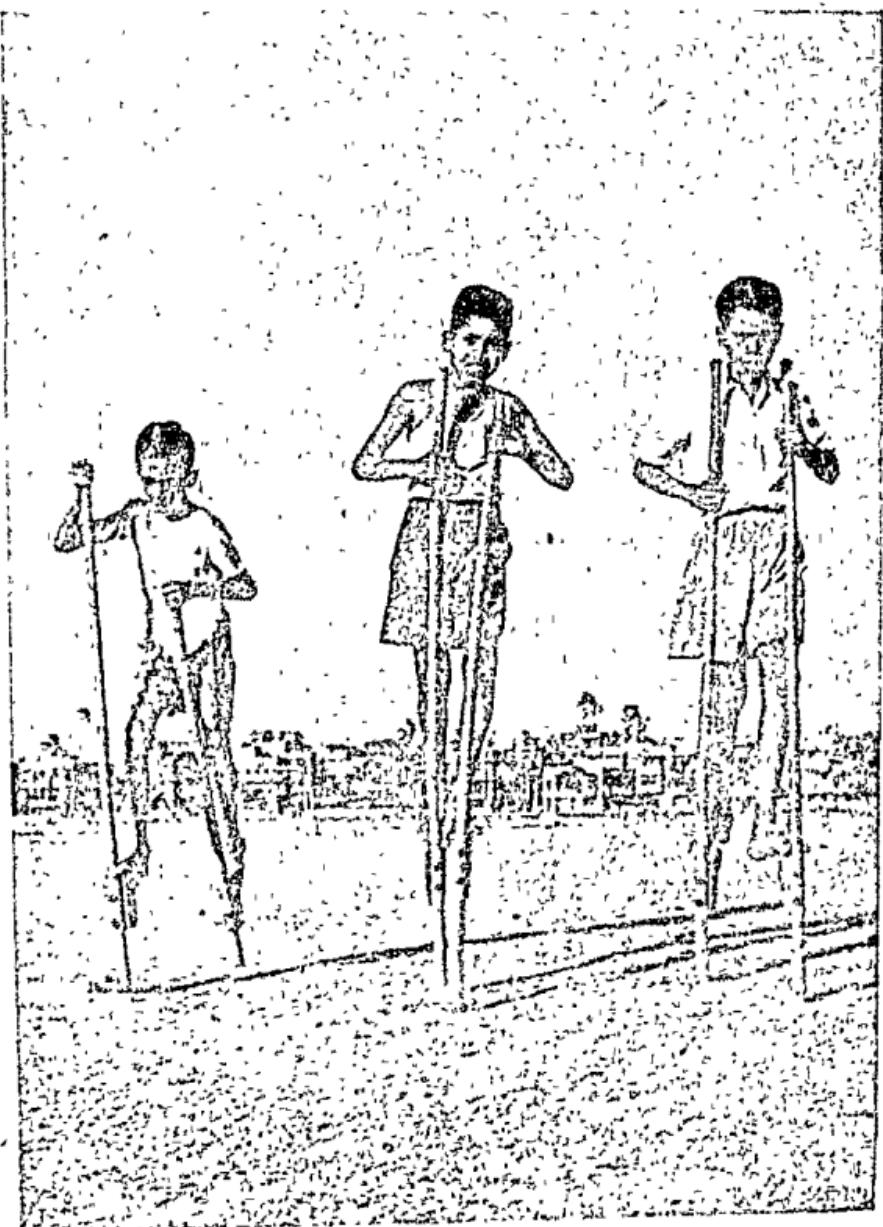
B. Bhansali

कल्पना कीजिये कि एक पन्द्रह महीने का शिशु एक सुन्दर गलीचे पर बैठा जामुन खा रहा है। कुछ जामुन दाहिनी ओर पड़ी हैं तो कुछ बाईं ओर; कुछ सामने हैं, तो कुछ मुंह में, कुछ कपड़ों पर हैं, तो कुछ हाथों में। वह प्रसन्न हो-हो कर जामुन मुंह में भरता जा रहा है। इस समय उस की ऐसी गत बनी हुई है कि यूंही देख कर हंसी आ जाए। हुआ यह कि जल्दी में नौकर ने बाजार से ला कर जामुनों की टोकरी कुर्सी पर रख दी और काम मे लग गया और जब थोड़ी देर में आ कर देखा तो यह दशा। बस आगे को इसे चेतावनी मिल गई। बालकों के शिक्षण में हमें सामान्य बुद्धि से काम लेना चाहिये और घर के नौकर-चाकरों को भी यही बात सिखानी चाहिये। जामुन जैसी वस्तु को तो खैर दूर उठा कर रक्खा जा सकता है, परन्तु ऐसी भी तो बहुत सी वस्तुएं हैं जिन से बालकों को खेलना नहीं चाहिये और उन्हें उठा कर दूर भी नहीं रक्खा जा सकता। अत. सब से उचित बात तो यही है कि न तो बच्चों के सामने से प्रत्येक आकर्षक वस्तु को हटाया जाए और न ही उस पर इतना भरोसा कर लिया जाए कि आप की पीठ मुड़ने पर किसी चीज को हाथ न लगाएगा।

अतः साधारण रूप से यही सिखाया जाए कि "इसे मत छूओ," "उसे मत छूओ"। इस प्रकार की शिक्षा का सम्बन्ध ऐसी वस्तुओं से होना चाहिये जिन तक बच्चा सरलतापूर्वक पहुंच सकता हो और बच्चे के घुटनों -चलने से पूर्व ही से यह शिक्षा आरम्भ हो जानी चाहिए, फिर आगे चल कर यही शिक्षण दूर-दूर रक्खी हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी जारी रक्खा जाए। इस के बाद बालक के कौतूहल की तृप्ति के लिये उसे गोद में बिठा कर वर्जित वस्तु को भली भांति देखने-भालने का उसे अवसर दिया जाए, और जब वह वस्तु अपने ठिकाने पर रख दी जाए, तो फिर उसे न छूने देना चाहिए।

इस समस्या के समाधान की विधियां

जिस वस्तु पर बालक का मन हो, उस को उस के सामने से हटाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। जब तक बच्चा आप के "यह हमें दे दो" कहने पर हाथ में उठाई वस्तु आप को देना न सीख ले, तब तक यही बेहतर होगा कि उसे कोई ऐसा खिलौना थमा दिया जाए जिस में तुरत ही उस का मन लग जाए। यदि उस के हाथ में से कोई वस्तु लेनी पड़ जाए तो मुस्कराते हुए बिना किसी घबराहट और क्रोध के ले लीजिए। इस प्रकार उसे बुरा भी न लगेगा और वह रुष्ट भी न होगा।

एक बात सिखाने के बाद तुरन्त ही दूसरी न सिखाइये। यदि आप ने ऐसा किया तो सम्भव है कि बच्चा इतना घबरा जाए कि उसे दोनों में से एक भी याद न रहे। "इसे न छूओ" जैसी बहुत सी बातें सिखाई जा सकती हैं।

चूंकि आज्ञापालन एक आदत है, इसलिये इस सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। जब आप एक बार बच्चे से किसी बात को करने या न करने को कह दें, तो फिर इस बात का ध्यान रखिये कि इस के प्रतिकूल कोई बात न हो। आज्ञापालन की आदत इस प्रकार नहीं पड़ती कि बच्चा कभी आज्ञा माने और कभी न माने।

प्रायः जब बच्चा किसी वर्जित बात को करने की इच्छा प्रकट करता है, तो माता या पिता तुरन्त

उस का ध्यान किसी दूसरी ओर लगा देते हैं और बच्चे पर इस परिवर्तन का तनिक भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, उस के आनंद में कोई कमी नहीं आती। इस प्रसंग में कदाचित् कोई यह कहे कि इस प्रकार तो बच्चे ने केवल आप का कहना माना है, अपनी इच्छा पर विजय प्राप्त नहीं की है। परन्तु इस बात को कौन न मानेगा कि बालक ने आज्ञा नहीं तोड़ी; थोड़ी और समझ आ जाने पर वह अपनी इच्छा पर भी विजय प्राप्त करने लगेगा। इस के अतिरिक्त और नहीं तो कम-से-कम इतना तो हुआ कि माता-पिता और बालक के बीच किसी प्रकार का बिगाड़ पैदा नहीं हुआ और प्रेम का भाव बना रहा और यही है महत्वपूर्ण बात, क्योंकि इस दशा में माता-पिता और बालक के बीच जो एक दीवार सी खड़ी हो जाती है वह इस विधि से नहीं खड़ी हो पाती और बालक को अपने माता-पिता पर पूर्ण विश्वास रहता है।

बालकों के शिक्षण के लिये अध्ययन तथा प्रयत्न दोनों की आवश्यकता होती है।

कुछ माता-पिताओं को इस बात का विश्वास ही नहीं होता कि हमारी आज्ञाएं, हमारे आदर्श भी माने जाएंगे अथवा नहीं। जो माता-पिता अपने बच्चों से आज्ञापालन की आशा रखते हैं उनके स्वर में आग्रह और भाव में दृढ़ता होती है, शांति और धैर्य होता है, तीखापन और चिड़चिड़ापन नहीं। छोटे

A. V. Ramamoorthy

सन्तुष्ट व प्रसन्न !

बच्चे भी कुछ-कुछ पशुओं के बच्चों के समान ही होते हैं, वे तीखेपन से सहम जाते हैं। पशुओं को सधाने वाले को बहुत ही शांति तथा धैर्य से काम लेना पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने से पशु वश में नहीं रहते, तो क्या बालक बछेरे जैसा कोमल-हृदय नहीं ?

जब बच्चे छोटे-छोटे काम करें तो माता-पिता को अपने मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह पैदा करके हर्षपूर्ण स्वर में उन की सराहना करनी चाहिए) श-चा-श-मे-रा-रा-जा-बेटा; वाह, भई वाह, तुम ने तो बड़ा काम किया; . . . इस प्रकार बालक अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करने में बड़ी तत्परता प्रकट करता है, और फिर भविष्य में कभी भी उन का कहा नहीं टालता।

आज्ञापालन के सिद्धांत

बालकों को अपने माता-पिता की आज्ञा क्यों माननी चाहिये ? कभी-कभी तो हम कुछ माता-पिताओं के मुख ही देख कर सोचने लगते हैं कि ये इस प्रश्न का उत्तर जानते भी हैं अथवा नहीं। क्या बच्चे अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन इसलिये करते हैं कि वे बच्चों से अधिक बलवान होते हैं, या इसलिए कि वे माता-पिता हैं, या फिर इसलिए कि माता-पिता अपने बच्चों के सामने नियम व सिद्धांत के प्रतिनिधि बन कर खड़े होते हैं और उन्हें नियम व सिद्धांत से परिचित कराते हैं ?

कहा जाता है कि बच्चों को यह नहीं सिखाना चाहिए कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करो, अपितु यह सिखाना चाहिये कि किसी नियम तथा औचित्य के सिद्धांत को मानो, उस पर चलो। इस का कारण यह बताया जाता है कि आज्ञापालन एक आदत बन जानी चाहिए, जिस से यदि किसी बच्चे के माता-पिता न भी हों तो भी वह अपने पर प्रत्येक प्रकार का नियंत्रण रख सके। परन्तु भला नन्हा सा बच्चा "नियम" तथा "औचित्य के सिद्धांत" जैसी गूढ बातों को क्या जाने, क्या समझे ? इस नियम और सिद्धांत के पीछे किसी का होना आवश्यक है ताकि बालक उसे देख सके और समझ सके; इस के ही साथ यह भी आवश्यक है कि जो कोई भी इस नियम और सिद्धांत के पीछे हो, वह ऐसा हो जिस का कहना बच्चों से टालते न बने।

कारण व समाधान

आइये इस विषय पर विचार करें कि आखिर बालक आज्ञा पालन क्यों नहीं करते। इस के क्या-क्या कारण हैं ?

(१) बच्चे मन मानी करना चाहते हैं और बात भी स्वाभाविक सी है, आखिर हम बड़े हो कर भी तो मन मानी करना चाहते हैं। इस दशा में बच्चों के मस्तिष्क में यह बात बिठाई जाए कि उन की प्रत्येक बात सदा ही ठीक नहीं होती, इस के विपरीत माता-पिता को जीवन का पर्याप्त अनुभव होता है, इसलिये वे प्रत्येक कार्य और हर बात के अच्छे-बुरे परिणाम को सोच सकते हैं।
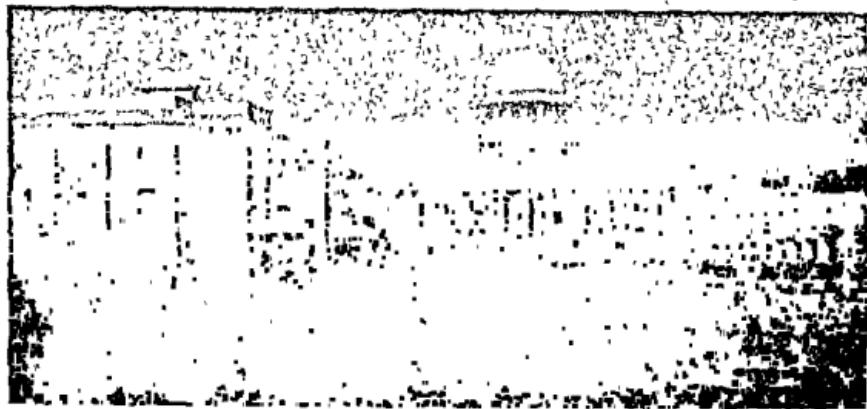
Benedict Raphael

विद्यालय में विद्यार्थी अनुशासन तथा आज्ञा-पालन का पाठ सीखते हैं।

(२) बहुत से माता-पिता बच्चों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत नहीं कर पाते।

पहले-पहल तो बच्चा यही सोचता है कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो मुझे किसी का भी कहना नहीं मानना पड़ेगा। मेरे पिता को तो किसी की आज्ञा का पालन नहीं करना पड़ता। परन्तु ज्यों-ज्यों बच्चा बढ़ता जाता है और उस में समझ आती जाती है, त्यों-त्यों उसे ज्ञात होता जाता है कि मेरे पिता जी को भी किसी की आज्ञा का पालन करना पड़ता है, किसी के आदेश पर चलना पड़ता है। इस के पश्चात् वह सदा ही इस बात की ताक में रहता है कि पिता जी कहीं कभी किसी नियम का उलंघन तो नहीं करते। वह मार्ग में आदमियों और गाड़ी-घोड़ों के आने-जाने के नियमों को पढ़ता है। वह अपने पिता जी के साथ आगे साइकल पर बैठा है। पिता जी जरा जल्दी में हैं। वह इधर-उधर देख कर तेजी से गलत तरफ से निकल जाते हैं। बच्चा इस प्रकार के नियम-उलंघन को देखता है और स्वाभाविक रूप से अपने मन में समझ लेता है कि यदि आंख बचा कर निकल जाया जाए तो कोई हानि नहीं।

(३) बच्चों से आज्ञा-पालन कराने के सम्बन्ध में माता-पिता को किसी भी अवसर पर और किसी भी परिस्थिति में टील-टाल नहीं करनी चाहिये।

अब कल ही की बात है कि अजीत की माता ने उस से कहा कि देखो अजीत तुम राम के साथ न खेला करो। इस प्रतिबन्ध के कारण तो बहुत से थे, परन्तु अजीत की माता ने उसे न कुछ बताया और न कुछ समझाया। आज यह हुआ कि श्रीमती शाह अपने बेटे राम को साथ ले कर अजीत के घर आ पहुंचीं। अब तो यह हो ही नहीं सकता था कि दोनों बच्चे न खेलते। अतः वे बगीचे में खेलने

लगे। । यदि अजीत की माता उन दोनों को अन्दर कमरे में बुला कर उन पर निगाह रखतीं तो अन्दर एक तो वे हल्ला मचा-मचा कर सारा घर सिर पर उठा लेते, दूसरे कमरे में सजी हुई चीजों को उलट-पलट डालते । इस दशा में उन्हें कुछ कहना-सुनना भी बुरा लगता । वह चुप रहीं । परन्तु स्वभाव-निर्माण में किसी भी प्रकार की ढील-ढाल नहीं करनी चाहिये ।

यथोचित आवश्यकताएं

(४) प्रायः माता-पिता इस बात को जानने का प्रयत्न नहीं करते कि बच्चा हमारे आदेशों, हमारी आज्ञाओं को भली भांति समझता भी है या नहीं अथवा पर्याप्त रूप से इस बात को नहीं सोचते कि किसी कार्य को करने के लिये सहर्ष तत्पर हो जाना बालक की शक्ति के अन्दर है भी या नहीं । प्रायः जल्दी में आधी ही बात करते हैं । उदाहरणार्थ हड़बड़ी में सामान बांधते समय शंकर के पिता बोले कि शंकर जरा दौड़ कर मेरी मेज पर से पुस्तक उठा लाओ । शंकर दौड़ा हुआ अन्दर कमरे में पहुंचता है । परन्तु देखता क्या है कि मेज पर दो पुस्तकें हैं—एक पतली और एक मोटी । वह क्षण भर कुछ सोचता है और फिर मोटी पुस्तक उठा कर दौड़ा हुआ अपने पिता के पास पहुंचता है । शब्द-कोष को देख कर उस के पिता की भौंहे चढ़ गईं, झिड़कते हुए बोले—शंकर तुम्हें जरा बुद्धि से काम लेना चाहिये । परन्तु जरा सोचने की बात है—शंकर छोटा सा बच्चा है, उस में अपने पिता का सा अनुभव तो नहीं, आखिर कैसे समझता कि उन्हें कौन सी पुस्तक चाहिये थी । उसका नन्हा सा दिल टूट जाता है । पिता जी की झिड़की ने उस की दिल्ली जाने की सारी खुशी पर पानी फेर दिया । वह रास्ते भर पिता जी से फूला-फूला रहा ।

(५) कभी-कभी माता-पिता बच्चों के सामने ऐसी-वैसी बातें कह बैठते हैं । प्रायः किसी-किसी माता को कुछ इस प्रकार की बातें कहते सुना गया है कि सुरेश तो बस अपने पिता का ही कहना सुनता है, जानता है न कि न सुने तो वह ठीक ही कर दें, पर मेरे कहे पर तो ध्यान दिया-दिया न भी दिया । परन्तु मूर्खता के इन शब्दों से स्पष्ट है कि सुरेश क्यों सहर्ष और तत्परता से अपने पिता का कहना सुन लेता है और अपनी माता की बातों को क्यों कानों पर से टाल देता है ।

बालकों को अनुशासन सिखाते समय न तो बहुत ही सख्ती बरतनी चाहिये और न ही बहुत ढील देनी चाहिये । अपने आप समझ-बूझ कर काम करने की शक्ति व योग्यता बालकों में धीरे-धीरे पैदा करनी चाहिये जिन से वे आगे चल कर कोई गलती न करें । क्योंकि इस सारे नियंत्रण का एक मात्र उद्देश्य है बालक में आत्म-शासन विकसित करना ।

N. Ramakrishna

ग्यारहवीं बार

अजीत के जन्म-दिवस पर उस के पिता ने उसे एक सुन्दर सी नई साइकल ले दी। अच्छी बड़ी सी साइकल थी—लाल-लाल चमकदार "मड्गार्ड" चांदी सा चमकता हुआ "हैंडल" और उस में नन्ही सी घंटी। साइकल पाकर अजीत इतना प्रसन्न हुआ, मानो उसे संसार की सब से प्रिय वस्तु प्राप्त हो गई हो और उस पर चढ़ने को इतना उत्सुक हो उठा कि बाहर जाने के लिए कपड़े पहनकर उसे तैयार करना दूभर हो गया।

अजीत के पिता ने उसे समझा दिया था कि साइकल बहुत संभल कर चलाना, क्योंकि उन लोगों का मकान एक पहाड़ी पर था और साइकल के लिए कुछ अधिक समतल भूमि न थी। उन्होंने यह भी बता दिया था कि देखो ढाल पर न जाना। आस-पास तीन मकान थे और उनके सामने था समतल मार्ग जिस पर बेखटके अजीत साइकल चला सकता था। पड़ोस में राम के पास भी साइकल थी। बस ये दोनों बालक अपनी-अपनी साइकल को लगे दौड़ाने। घंटों यह खेल जारी रहता था, और उस समय उन्हें न थकन लगी थी और न भूख।

एक दिन सवेरे-ही-सवेरे जब अजीत अपनी साइकल को दौड़ाता फिर रहा था उस के पिता ने उसे पुकारा। परन्तु वह खेल में मग्न था, अन्दर नहीं जाना चाहता था, इसलिए उसने सुनी अनसुनी कर दी। वह घर के सामने से तीव्रता से निकल गया मानो उसने अपने पिता को देखा ही न हो। फिर ज्योंही वह घर के फाटक के सामने से गुजरा, उसके पिता ने फिर आवाज दी कि अजीत आओ नाश्ता कर लो। पर अजीत क्यों आने लगा था। जब वह घूम कर आया तो उसने अपने पिता को दरवाजे पर खड़े देखा, परन्तु अजीत अब भी अन्दर नहीं जाना चाहता था। उसने अपने पितासे कहा कि पिताजी केवल एक चक्कर और लगा लूं, अभी आता हूं। मैं दस चक्कर तो लगा चुका हूं, ग्यारहवां और लगा लूं। उसके पिता बच्चे की बातों में आगए और उन्होंने कहा कि अच्छा देखो एक चक्कर और लगा लो और तुरन्त अन्दर आ जाओ, नाश्ता ठंडा हो रहा है और हमें दफ्तर जाना है।

परन्तु यह "एक बार और" जीवन में प्रायः बड़ी-बड़ी आपत्तियां उत्पन्न कर देती हैं। अनुमति मिलते ही अजीत जल्दी-जल्दी "पैडल" मारता हुआ आगे निकल गया। आधा ही चक्कर कटा होगा कि अगला पहिया एक पत्थर से टकरा गया और साइकल का रुख ढाल की ओर हो गया। पहिए तीव्रता से घूमने लगे। अजीत ने बहुतेरा "ब्रेक" दबाया, परन्तु साइकल धीमी न हुई और पत्थरों के एक ढेर से टकरा कर खड्ड की तरफ उलट गई। अजीत साइकल सहित लुढ़कता हुआ खड्ड में बहुत नीचे पहुंच गया।

N. Ramakrishna

ग्यारहवीं बार

अजीत के जन्म-दिवस पर उस के पिता ने उसे एक सुन्दर सी नई साइकल ले दी। अच्छी बड़ी सी साइकल थी—लाल-लाल चमकदार "मड्गार्ड" चांदी सा चमकता हुआ "हैंडल" और उस में नन्ही सी घंटी। साइकल पाकर अजीत इतना प्रसन्न हुआ, मानो उसे संसार की सब से प्रिय वस्तु प्राप्त हो गई हो और उस पर चढ़ने को इतना उत्सुक हो उठा कि बाहर जाने के लिए कपड़े पहनकर उसे तैयार करना दूभर हो गया।

अजीत के पिता ने उसे समझा दिया था कि साइकल बहुत संभल कर चलाना, क्योंकि उन लोगों का मकान एक पहाड़ी पर था और साइकल के लिए कुछ अधिक समतल भूमि न थी। उन्होंने यह भी बता दिया था कि देखो ढाल पर न जाना। आस-पास तीन मकान थे और उनके सामने का समतल मार्ग जिस पर बेखटके अजीत साइकल चला सकता था। पड़ोस में राम के पास भी साइकल थी। बस ये दोनों बालक अपनी-अपनी साइकल को लगे दौड़ाने। घंटों यह खेल जारी रहता था, और उस समय उन्हें न थकन लगी थी और न भूख।

एक दिन सवेरे-ही-सवेरे जब अजीत अपनी साइकल को दौड़ाता फिर रहा था उस के पिता ने उसे पुकारा। परन्तु वह खेल में मग्न था, अन्दर नहीं जाना चाहता था, इसलिए उसने सुनी अनसुनी कर दी। वह घर के सामने से तीव्रता से निकल गया मानो उसने अपने पिता को देखा ही न हो। फिर ज्योंही वह घर के फाटक के सामने से गुजरा, उसके पिता ने फिर आवाज दी कि अजीत आओ नाश्ता कर लो। पर अजीत क्यों आने लगा था। जब वह घूम कर आया तो उसने अपने पिता को दरवाजे पर खड़े देखा, परन्तु अजीत अब भी अन्दर नहीं जाना चाहता था। उसने अपने पितासे कहा कि पिताजी केवल एक चक्कर और लगा लूं, अभी आता हूं। मैं दस चक्कर तो लगा चुका हूं, ग्यारहवां और लगा लूं। उसके पिता बच्चे की बातों में आगए और उन्होंने कहा कि अच्छा देखो एक चक्कर और लगा लो और तुरन्त अन्दर आ जाओ, नाश्ता ठंडा हो रहा है और हमें दफ्तर जाना है।

परन्तु यह "एक बार और" जीवन में प्रायः बड़ी-बड़ी आपत्तियां उत्पन्न कर देती है। अनुमति मिलते ही अजीत जल्दी-जल्दी "पैडल" मारता हुआ आगे निकल गया। आधा ही चक्कर घटा होगा कि अगला पहिया एक पत्थर से टकरा गया और साइकल का रुख ढाल की ओर हो गया। पहिए तीव्रता से घूमने लगे। अजीत ने बहुतेरा "ब्रेक" दबाया, परन्तु साइकल धीमी न हुई और पत्थरों के एक ढेर से टकरा कर खड्ड की तरफ उलट गई। अजीत साइकल सहित लुढ़कता हुआ खड्ड में बहुत नीचे पहुंच गया।

O W Lange

साइकल के लुढ़कने की आवाज सुन कर पड़ोसी दौड़ पड़े जब अजीत को उठा कर लाये तो वह बेहोश था। तुरन्त ही उसके पिता उसको चिकित्सालय ले गए। उसके कपाल में चोट आ गई थी इसलिए "ऑप्रेशन" की आवश्यकता हुई। और उसे कई सप्ताह तक चिकित्सालय में पड़ा रहना पड़ा। साइकल टूट-फूट कर चकनाचूर हो गई थी।

अजीत के मित्र राम को और उसके घर वालों को बुरा तो बहुत लगा, परन्तु उसे आज्ञा न मानने का फल मिल गया।
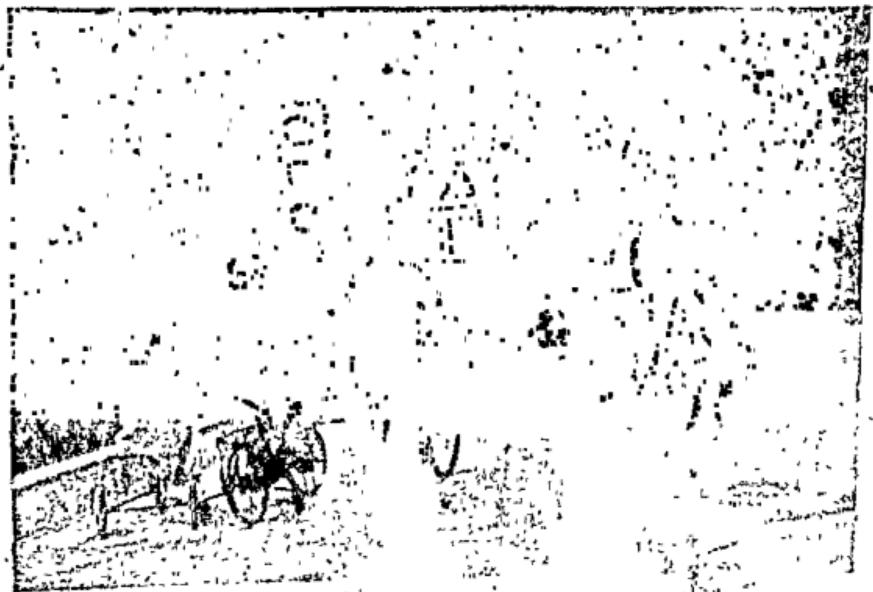
B. Bhansali

जीवन मरण की बात

ग्रीष्म-ऋतु में एक दिन संध्या-समय मैं अपने घर से कोई मील भर दूर एक ऊजड़ खेत में था। और बड़ी देर से ध्यानपूर्वक मोर के बच्चे के एक झुंड को देखने में लीन था। ये मोर के बच्चे पास वाले जंगल में से आ गए थे।

मैं एक पेड़ पर चढ़ा था और आस-पास की भूमि का निरीक्षण कर रहा था कि पेड़ के नीचे से एक लोमड़ी निकली और आगे जाकर पत्थरों के एक ढेर पर रुक गई। झिझकते हुए कुत्ते या बिल्ली के समान उसने पहले अपने अगले पंजे एक पत्थर पर जमा दिए। फिर बड़े-बड़े पत्थरों के बीच में से हो कर वह खेत में घुस गई। इस के इस व्यवहार ने मेरे मन में यह विचार उत्पन्न कर दिया कि वह दुबकती हुई छिपती-छिपती खेत के किनारे-किनारे चलना चाहती है। इस के बाद कुछ क्षणों तक कई बार जब उसने घास में से सिर निकाल-निकाल कर इधर-उधर देखा तो मुझे उस की थुथनी और उस के भूरे-भूरे बाल दिखाई दिए। इस प्रकार उसकी घातों से प्रतीत होता था कि मोर के बच्चों की खैर नहीं! लोमड़ी अब उन के पास ही जा पहुंची थी। वह घास में ही से ताक-झांक करती थी। वह किनारे की ओर बढ़ी जा रही थी। इस से जान पड़ता था कि मानो वह खेत को पार कर चुकने पर अब पछता रही हो।

उधर मोर के बच्चे बड़ी चढ़ाई कर रहे थे। उन्हें इतनी सारी टिड्डियां मिल गई थीं कि मां की चेतावनी पर उसके पीछे-पीछे न चलते थे। कभी यहां टूट जाते और कभी वहां। उन में से एक छोटा सा बच्चा तो इतना निडर निकला कि एक टिड्डी का पीछा करते-करते पत्थरों के उस ढेर के निकट जा पहुंचा जहां लोमड़ी घात लगाए दुबकी हुई थी। मोर के बच्चे ने टिड्डी पर चोंच मारी ही थी कि मां ने

B. Bhansali
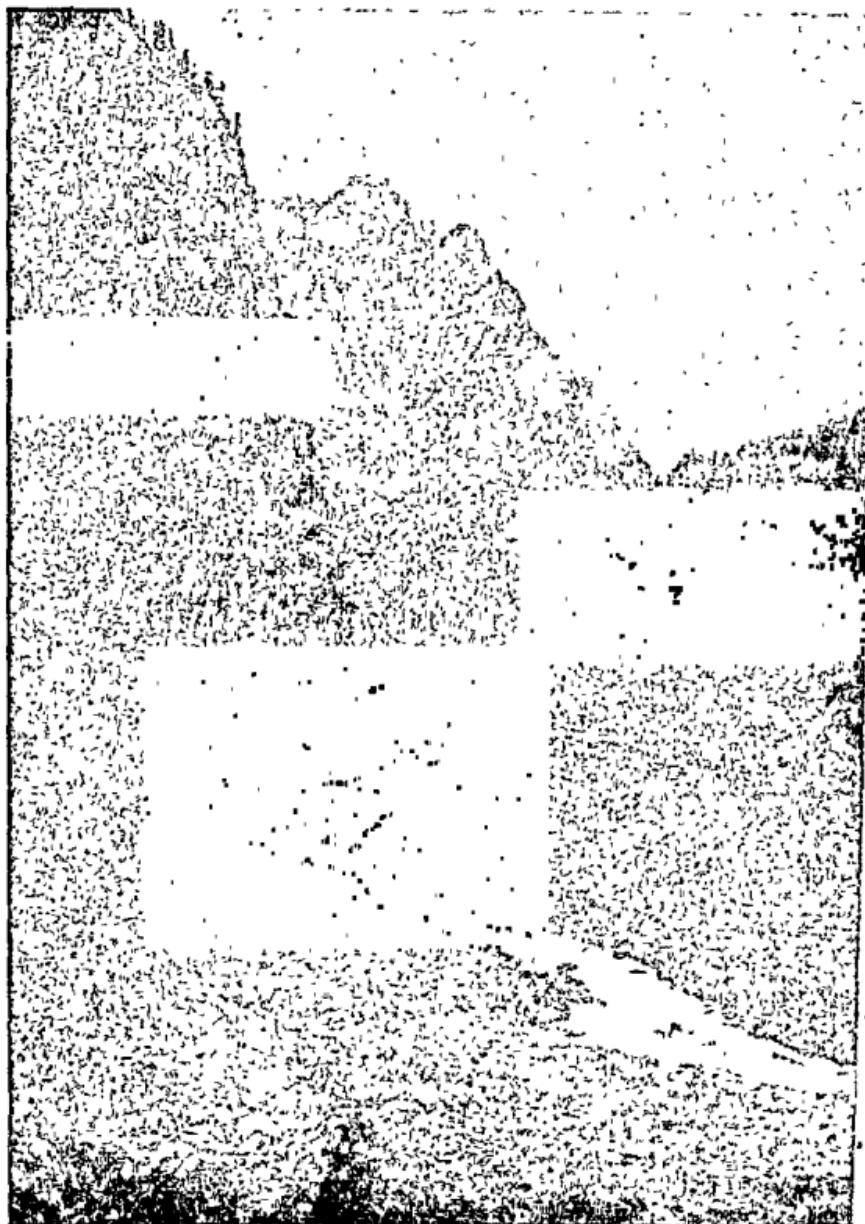
फिर चेतावनी दी और बच्चे को बुलाया। लोमड़ी घास में दुबकी-दुबकी जरा आगे को खिसकी। उस की आंखें चमक उठीं। यही तो वह चाहती थी कि झुंड में से एक बच्चा अलग होकर इधर आ निकले और मैं दबोच लूं।

मुझे यह स्थिति बड़ी नाजुक प्रतीत हुई। परन्तु क्षण भर में कुछ-का-कुछ हो गया। बच्चे ने मां की आवाज सुनी—उसे चेतावनी दी गई कि भय है—तुरन्त ही वह टिड्डी को छोड़-छाड़ पंख पसार कर उड़ गया और मां के पास सुरक्षित पहुंच गया। मां ने लोमड़ी को देख लिया था। उस ने बच्चों को चेतावनी दी और पल भर में वे सब के सब उड़ कर एक ऊंचे पेड़ पर जा बैठे। मोर के बच्चों के आज्ञापालन के कारण लोमड़ी को अत्यन्त निराशा हुई।

जंगली पशु-पक्षियों के बच्चे भी अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना जानते हैं।

—आर्चीबाल्ड रदर्लेज

झूठ अथवा काल्पनिक* बातें

झूठ भी विभिन्न प्रकार के होते हैं; बस ऐसे ही जैसे भांति-भांति के रोग, अतः इन की प्रतिविधियां भी पृथक-पृथक होनी चाहिए। कोई भी चिकित्सक सभी रोगों का एक ही उपचार नहीं सोचता। इसी प्रकार प्रबल कल्पना द्वारा उत्पन्न असत्य की प्रतिविधि बिलकुल उसी तरह की नहीं होनी चाहिये जिस तरह की उस झूठ की होती है जो किसी अपराध से मुक्त होने के लिये बोला जाए और साथ-ही-साथ किसी निर्दोष व्यक्ति को फंसाता भी हो। ये तो खैर झूठ की दो चरम-सीमाएं हुईं, परन्तु इन दोनों के बीच और भी कई प्रकार के झूठ होते हैं।

झूठ बोलने के अभिप्राय पर तनिक विचार कीजिए

झूठ बोलने की आदत छुड़ाने के प्रयास में सब से पहले झूठ बोले जाने के अभिप्राय पर विचार करना अत्यावश्यक होता है। मान लीजिये कि कल बालक ने झूठ बोला, तो क्या उस ने अपने मित्र को संकट से बचाने के लिये झूठ बोला था? या अपने बचाव के लिये? या इसलिये कि "शिष्ट" प्रतीत हो? या फिर इसलिये कि कल्पना-शक्ति ने उसे भटका दिया था? कारण जानना आवश्यक है। चिकित्सक की भांति हमें चाहिए कि बात की तह तक पहुंचें, कारण मालूम करें। चिकित्सा कतिपय प्रश्न करता है। *उन में से कुछ तो रोगी को नितान्त ऊट-पटांग प्रतीत होते हैं, परन्तु चिकित्सक उन के* महत्व को खूब जानता है। कभी-कभी वह रोगी के विषय में अन्य व्यक्तियों से भी पूछताछ करता है। यदि परिचारिका हुई, तो उस के उत्तर रोगी के उत्तरों से कहीं अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। अतः माता-पिता अथवा शिक्षक-शिक्षिका को भी प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रश्नोत्तर द्वारा झूठ-सच की जांच-पड़ताल करनी चाहिए।

यदि बात केवल माता-पिता तथा बालक के ही बीच हो और माता-पिता पर बालक का विश्वास हो, तो वे शीघ्र ही बात को कुरेद निकालेंगे। बहुत हद तक यह बात शिक्षक-शिक्षिका तथा विद्यार्थी के सम्बन्ध में भी ठीक उतरती है, यद्यपि शिक्षक और विद्यार्थी का अधिक समय से परिचय न होने के कारण वह बात तो हो नहीं सकती जो माता-पिता और बालक के बीच सम्भव होती है। परन्तु कभी-

*अण्ड-बण्ड विचार और मनघड़न्त बातें

कभी ऐसा भी होता है कि माता-पिता अपने किसी विशेष दृष्टिकोण और इस भ्रम के कारण कि हमारा बच्चा कभी इतनी भारी गलती कर ही नहीं सकता, वास्तविक परिस्थिति से अपरिचित रह जाते हैं और इस के फलस्वरूप झूठ का वास्तविक कारण ज्ञात नहीं हो पाता।

सच बोलने के आदर्श

सब से पहली और महत्वपूर्ण बात तो यह है कि बालक के सामने सच बोलने का उच्च आदर्श उपस्थित किया जाए। बालक में थोड़ी-थोड़ी समझ आते ही, इस आदर्श-निर्माण का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। इसलिए सच्ची कहानियां तथा यथार्थ जीवन-चरित्रों से बढ़ कर कदाचित् और कोई साधन नहीं। जब बालक ऐसी कहानियां सुनता है जिन के नायक उस परिस्थिति में भी सच बोलना नहीं छोड़ते जिस में सच बोलना उन के लिए अहितकर सिद्ध होता, तो ऐसे सत्यवादियों के प्रति बालक के हृदय में आदर और सम्मान पैदा हो जाता है और वह सत्य की महिमा को पहचानने लगता है। सत्य पर आधारित ऐसी कहानियां सुन कर, जिन में सत्य और असत्य के बीच प्रतिद्वंद हो और अन्त में सत्य की विजय हो, बच्चों को असत्य और उस से सम्बन्धित स्वार्थ तथा कायरता से घृणा होने लगती है। कहानियों में वर्णित बुरे चरित्रों से बालकों को ग्लानि होने लगती है, वे वीर, साहसी तथा सच्चे पात्रों की ओर आकर्षित होते हैं, उन से प्रेरणा पाते हैं और बुरे पात्रों के प्रति घृणा प्रकट करते हैं।

प्रायः बालक अपने घरों में और अपने साथियों से झूठी बातें सुन कर ही झूठ बोलने लगते हैं। अतः बच्चों को बुरी संगत से बचा कर रखना चाहिए। यदि हमारी अपनी संगत बच्चों के लिये अच्छी न हो, तो हमें उन आदतों तथा बातों को त्याग देना चाहिये जिन से बच्चों पर दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका हो।

"शिष्टाचारात्मक" असत्य

सम्भवतः उन माता-पिताओं के लिये "शिष्टाचारात्मक असत्य" का स्पष्टीकरण आवश्यक है, जिन्हें इस तथ्य में संदेह प्रतीत होता है।

हो सकता है कि वे यह कहें कि कुलीन माता-पिता न तो अपने बच्चों ही से झूठ बोलते हैं और न ही अन्य व्यक्तियों से—परन्तु तनिक गम्भीरता से सोचिये। यह क्या था जो 'आप' ने श्रीमती शुक्ल से उस दिन कहा था? क्या 'आप' ने यह नहीं कहा कि वाह! बहन जी, उस दिन शकुन्तला की शादी में तो आप ने गाना क्या गाया, सचमुच कमाल ही कर दिया, क्या गला पाया है आप ने, वाह! वाह! — और हां, उस से पूर्व शकुन्तला की शादी में से घर आकर क्या 'आप' ही ने अपने पतिदेव से यह नहीं कहा था कि शुक्ल जी की पत्नी ने तो आज गाने की वह होड़ मारी है कि बस कुछ न पूछिये, गला क्या है, फटा हुआ बांस है। न जाने किस ने उन से गाने को कह दिया — इससे

हंसते पेट फूल गये ! — परन्तु तनिक सोचिये, जब श्रीमती शुक्ल आप के यहां आई थीं, तो क्या उन से उन के गाने के विषय में कुछ कहना और प्रशंसा करना अनिवार्य था ? यदि 'आप' को उन का गाना पसंद नहीं आया था, और यदि उन की आवाज भद्दी थी, तो उन से यह सब कहने की आवश्यकता ही नहीं थी।

और सुनिये, मान लीजिये कि गत सप्ताह एक दिन 'आप' सवेरे से काम करती-करती थक कर चूर हो गई थीं। तीसरे पहर आप थोड़ी देर आराम करना चाहती थीं। 'आप' ने सुशीला से कहा कि बेटी, अब तो मैं थोड़ी देर के लिये लेटती हूं, अब कोई भी क्यों न आ जाए, उठने की नहीं। 'आप' लेट गई। परन्तु थोड़ी ही देर में रमन बाबू अपने परिवार सहित आ पहुंचे। आप उठीं। और जब उन के स्वागत को आगे बढ़ीं, तो आप ने कहा था कि आइये, आइये बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप लोग पधारे ! — अब यद्यपि यह तर्कपूर्वक कहा जाता है कि ऐसा 'झूठ' जो 'शिष्टाचार' के अन्तर्गत आ जाता है, परन्तु आप के बालक-बालिकाएं उसे कोरा झूठ समझते हैं, कोरा झूठ ! अतः इस विषय में सावधानी बरतनी चाहिये; क्योंकि उपदेश से कहीं अधिक प्रभावशील होता है उदाहरण व आदर्श उपस्थित करना।

माता-पिता के झूठे वायदे

इसके अतिरिक्त माता-पिता एक प्रकार से भी झूठ बोल बैठते हैं। वे बच्चों से वायदे तो कर देते हैं, परन्तु पूरे करने में चूक जाते हैं। उदाहरणतः जितेन्द्र के माता-पिता उस से कहते हैं कि अच्छा भई, इस बार तो नहीं, परन्तु अगली बार तुम्हें अवश्य ही बाजार ले चलेंगे। अब जब वह "अगला बार" आती है, तो उस को साथ ले जाना असुविधाजनक प्रतीत होता है। उस से फिर कहा जाता है कि भई अगली बार तो तुम्हें जरूर ले चलेंगे। परिणाम यह होता है कि उसे निराशा होती है, कदाचित् क्रोध भी आता है। वह अपने माता-पिता को झूठा समझने लगता है। हो सकता है कि वह आवेश और क्रोध में या फिर किसी दूसरे बच्चे की सीखा-सीख अपने माता-पिता को दरवाजे से बाहर निकलते हुए देख कर बड़बड़ाए कि चल दिये झूठे कहीं के ! बात तो निस्संदेह बड़ी भयंकर है, परन्तु सोचना यह है कि इस में दोष किस का है।

बहुत से शिक्षक-शिक्षिकाएं कहते हैं कि बालकों की कल्पना-शक्ति का विकास अत्यावश्यक है। अतः वे इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु बालकों के मस्तिष्कों में काल्पनिक कथाएं, परियों-देवों की कहानियां और पशु-पक्षियों के उट-पटांग किस्से भर देते हैं। फल यह होता है कि ज्यों-ज्यों बालक प्रकृति के सत्यों को अधिकाधिक जानने और समझने लगता है, त्यों ही त्यों उसे इस बात का ज्ञान और अनुभव होने लगता है कि मेरे मस्तिष्क में तो झूठी, और काल्पनिक बातें भरी गई हैं। परन्तु चूंकि ये कहानियां उसे बड़े ही रोचक ढंग से सुनाई जा चुकी हैं। इसलिए उसे ऐसी ही कहानियों में आनन्द मिलता है वह ऐसी ही कहानियां बड़ी रुचि से पढ़ता है। अब उस के चरित्र पर और उस

Vasudev Muljimal

के भावी जीवन पर इस का क्या प्रभाव होता है ? एक तो शिक्षक या शिक्षिका की मेहनत अकारथ जाती है, दूसरे बालक उचित मार्ग से भटक जाता है । कितना शोचनीय परिणाम है ! कल्पना-शक्ति तो अवश्य ही विकसित करनी चाहिये, परन्तु मिथ्या कथाओं द्वारा नहीं, अपितु ऐसी कहानियों द्वारा जो जीवन की यथार्थता पर आधारित

काल्पनिक कथाओं से हानियां

एक दिन मैं अपनी मेज पर बैठी हुई नई-नई पुस्तकों के एक सूचिपत्र को देख रही थी। वह सूचिपत्र बड़ी ही दक्षता और सुन्दरता से तैयार किया गया था। बड़े सुन्दर सुन्दर चित्र थे। पुस्तकों के मुख्य पृष्ठ बड़े आकर्षक थे। कुछ पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण भी थे और मूल्य भी अंकित थे। परन्तु लगभग सारी की सारी पुस्तकें उपन्यास थे और मजे की बात यह कि जितने हानिकारक तथा आचार भ्रष्ट करने वाले उन के कथानक, प्रतीत होते थे, उतने ही अधिक आकर्षक, रोचक तथा रोमांचकारी उन के विवरण थे। क्या आप ने इस बात पर कभी विचार किया है कि इतनी मिथ्या कथाओं के इतने सारे लेखक कहां से आ गये ? बात यह है कि चालीस-पचास वर्षों की लोकगत शिक्षा ने ही इन्हें जन्म दिया है। कल्पित कहानियां तो इन से भी बहुत वर्ष पुरानी हैं, परन्तु इन की संख्या पिछले दस-बीस वर्ष से कुछ बहुत ही अधिक वृद्धि पर है। कुछ शिक्षक-शिक्षिकाएं इस बड़ी भूल को अनुभव कर रहे हैं और अन्य उपायों से इसे सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस में तो कोई अचरज की बात नहीं कि जिन बालकों के मस्तिष्कों में कल्पित बातें भर दी जाती हैं, उन की कल्पना-शक्ति अति प्रबल हो जाती है, या जिन के मन में झूठ का बीज बो दिया जाता है, वे झूठ बोलने में बे-जोड निकलते हैं। अतः बालक को दण्ड देने के बदले हमें उस का सुधार करना चाहिये जिस से वह "बे पर की उड़ाना" छोड़ दे, और झूठ बोलना त्याग दे, क्योंकि दोष उसी का नहीं।

यह तो ठीक है कि कल्पना-शक्ति के विकास को रोकना नहीं चाहिये, अपितु बालकों को इस क्षेत्र में प्रोत्साहित करना चाहिये, परन्तु इस तरह कि कल्पना-शक्ति के विकास का आधार बजाये झूठ के सच हो।

स्वार्थपूर्ण कल्पना

बच्चों का कल्पना-क्षेत्र प्रायः अपने ही तक सीमित होता है। हो सकता है कि बालक 'अपने' ऐसे बहादुरी के कारनामों को गिनाना शुरू कर दे, जिन से उस का दूर का संबंध भी न हो। बड़-

सामनेवाला चित्र—कुछ पुस्तकें हमारी कल्पना-शक्ति को उचित रूप से विकसित करने में सहायक होती हैं।

B. Ranganathan

बढ़ कर बातें करने और झूठी शेखी बघारने की जड़ होती है या तो कल्पना या फिर शेख-चिल्ली के से मनसूबे। इस आदत को छुड़ाने के लिए सब से पहली बात है कि इस की उत्पत्ति का मूल कारण मालूम किया जाए। इस के बाद उपयुक्त उपायों द्वारा इस आदत को छुड़ाने का प्रयास किया जाए, अर्थात् जैसा रोग, वैसा उपचार। इस प्रकार का झूठ वास्तव में कोई-न-कोई अनुचित लाभ उठाने के लिये ही बोला जाता है, अतः एक प्रकार की बेईमानी हुई जो बालक अपना कोई काम निकालने अथवा झूठा गौरव प्राप्त करने के हेतु करता है। यदि जान-बूझ कर ढिठाई से झूठ बोले तो उसे इस अपराध के अनुकूल सुधारात्मक दण्ड देना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि इस प्रकार के सभी अपराधी बालकों को एक ही प्रकार का दण्ड न दिया जाए, अपितु बालक-बालिका के स्वभाव, उस की कमजोरियों और उस के विशेष दोष के अनुकूल ही हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि अपराधी बालक को अकेले कमरे में बन्द कर दिया जाए, तो उसे अपनी भूल पर सोच-विचार करने का अवसर मिल जाता है और समस्या आप-से-आप सुलझ जाती है। प्रयत्न सर्वदा करना चाहिए कि किसी-न-किसी प्रकार बालक अपने झूठ को पहचान कर उस में कायरता तथा स्वार्थ की विद्यमानता से परिचित हो जाए।

जो बच्चा काल्पनिक संसार में विचरता है और अपने मन से अंड-बंड बातें घड़ता है, उस का सुधार अन्य रीति से होना चाहिये। जिस प्रकार वनस्पति-जगत पौष्टिक पदार्थों से वंचित बालक के शारीरिक पोषण तथा विकास के हेतु आवश्यक और उपयुक्त आहार प्रदान करता है, उसी प्रकार प्रकृति का अध्ययन बालक के मानसिक सुधार तथा विकास के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करता है। इस की विधि यह है, कि बालक से प्रकृति की वस्तुओं का उपयुक्त शब्दों में वर्णन कराया जाये। विज्ञान यथार्थ है। परन्तु याद रहे कि प्रकृति-वर्णन को न तो बच्चा ही यह समझने पाए कि यह दण्ड मात्र है और न ही माता-पिता ऐसा सोचें। सच तो यह है कि इस प्रकार के अभ्यास का सम्बन्ध ही झूठ बोले जाने से नहीं होना चाहिए।

यदि बालक कोई कहानी सुनाये और उस में अपनी मन-गढ़ंत बातें जोड़ दे, तो उस से वह कहानी दोबारा सुनाने को कहिए और कहिए कि केवल तथ्य चुन-चुन कर सुनाये। जब तक बालक ऐसा न कर सके, तब तक उस से वही कहानी बार-बार सुनिये और हर बार इस बात पर जोर दीजिए कि वह अपने वर्णन में से अंड-बंड बातें पूर्णतया निकाल दे। यदि परिस्थिति गंभीर प्रतीत हो तो ऐसा जताइये मानो बालक आप से मजाक कर रहा है और गम्भीर स्वर में कहिये देखो भई, यह हँसी-मजाक तो रहे छोड़, और हमें ठीक-ठीक बातें सुनाओ, हां तो आगे क्या हुआ?

किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना

किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहने और झूठ बोलने में बहुत ही निकट का सम्बन्ध होता है, या फिर यूं कहिए कि यह भी झूठ बोलना ही है। सभी बच्चों को खेल प्रिय होते हैं इसलिए

K. M. Vaid

खेल-ही-खेल में इस आदत का सुधार हो सकता है। उदाहरणार्थ—माता-पिता और बालक सब मिल कर इस प्रकार खेलें कि अच्छा भई घर में जो कोई भी किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहेगा, उसी को एक पैसा (या एक आना) दंड देना पड़ेगा। अब होगा यह कि माता-पिता और बालक सभी सावधान रहने का प्रयत्न करेंगे और इस प्रकार सभी को इस से लाभ होगा, आदत छूट जायेगी। यह बहुत ही रोचक है, परन्तु एक बात का ध्यान रहे कि दंड चुनने में बड़ी सावधानी से काम लिया जाए,

कहीं ऐसा न हो कि स्वयं माता-पिता ही चूक जायें और परिस्थिति अपमानजनक सिद्ध हो या व्यग्रता का कारण बन जायें।

यदि कोई बालक डर के मारे झूठ बोले, तो इस का दोष माता-पिता या शिशु पर होता है और यदि इस अपराध का कोई दण्ड निश्चित हो, तो उन्हें स्वयं भुगतना चाहिये। ऐसी दशा में बालक को दण्ड देना निर्दयता होगी। अत: उस का सुधार शिक्षा रोक-टोक और प्रेम द्वारा कीजिए।

झूठ बोलने के अपराध में स्वाभाविक दण्ड

किसी पर से विश्वास जाता रहना भी एक प्रकार का स्वाभाविक दण्ड ही होता है। निम्न कहानी इस बात को भली भांति स्पष्ट करती है :-

एक दिन तीसरे पहर की बात है कि एक लड़का मैदान में अन्य लड़कों के साथ एक टट्टू पर चढ़ने-उतरने में मग्न रहा। घर आने पर जब देर तक बाहर रहने का कारण पूछा गया, तो उस ने निःसंकोच कह दिया कि अमुक लड़के के यहां खेल रहा था।

बाद में जब वास्तविक बात ज्ञात हुई तो उस के पिता ने उसे आड़े हाथों लिया—

"क्यों मोहन, हमने या तुम्हारी माता ने भी तुम से किसी अवसर पर किसी बात में झूठ बोला है, आखिर तुम ने हम लोगों को चकमा क्यों दिया ? शायद तुम सोचते होगे कि बड़ा कारनामा था, बड़ी अच्छी बात की थी तुम ने ?

"जी नहीं," मोहन ने सिर झुकाते हुये कहा। मारे शर्म के उस का मुंह लाल पड़ गया। "मैं मानता हूं कि मैं ने बहुत बुरा काम किया।"

उस के पिता ने बात को और न बढ़ाते हुये केवल इतना कहा कि खैर तुम्हें इस अपराध का दंड तो भुगतना ही पड़ेगा। परन्तु उन्होंने यह कुछ न कहा कि किस प्रकार।

दो-तीन दिन के बाद मोहन दौड़ा-दौड़ा घर में आया और कहने लगा कि हमारे पड़ोसी शर्मा जी मुझे अपनी कार में सैर कराने ले जा रहे हैं।

"जाऊं न ?" उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा। परन्तु उस के पिता तो बाहर निकल गए, और माता ने कहा, "मेरे पास आओ मोहन, हां तो मैं कैसे मान लूं कि शर्मा जी ने सचमुच से अपनी कार में सैर कराने को कहा है ?"

इस प्रश्न पर मोहन तनिक घबराया। उस ने अपनी माता की ओर देखा और बोला "उन्हों ने अभी-अभी कहा है, माता जी, आप उन से पूछ लीजिए, देखिए वे सामने बरामदे में खड़े हैं।"

George C. Thomas

"अच्छा तो अब मैं उन से पूछूं ?" उस की माता ने कहा, "और उन्हें यह जताऊं कि मुझे अपने बेटे मोहन पर विश्वास नहीं है, है ?"

बालक और भी उत्सुकता और विस्मय से अपनी माता के मुंह की ओर ताकने लगा, मानो कुछ समझ न पा कर उन की बातों का वास्तविक अर्थ समझने का प्रयत्न कर रहा हो। क्षण भर में उस का मुंह और भी लाल हो गया। उसे कुछ याद आ गया, वह समझ गया कि हो न हो माता जी अमुक दिन मेरे झूठ बोल देने के कारण इस समय मेरी बात पर संदेह प्रकट कर रही हैं।

"परन्तु, माता जी, मैं इस समय तो बिलकुल सच कह रहा हूं," मोहन ने गिड़गिड़ा कर कहा।

"पर मुझे कैसे मालूम हो ?" उसकी माता बोली, "मैं ने तो यही सोचा कि तुम आज भी उस दिन की तरह चकमा देने की कोशिश कर रहे हो। उस दिन हम ने तो तुम्हारे कहे का विश्वास कर लिया, परन्तु तुम ने तो बड़ा झूठ बोला कि . . . ."

"परन्तु माता जी," वह बीच ही बोल उठा, "मैं आज तो आप से सच-सच कह रहा हूं।"

"हो सकता है, मोहन," उस की माता ने उत्तर दिया, "कि तुम झूठ न बोल रहे हो, परन्तु कठिनाई तो यह है कि मुझे कैसे विश्वास हो ? मुझे तो उस दिन की बात और आज की बात में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता।"

"तो—न—जाऊं, माता जी ?" मोहन ने अत्यन्त निराशापूर्ण स्वर में पूछा।

"मुझे तो कोई रास्ता सूझता नहीं," उस की माता बोली, "अब मैं शर्मा जी से कैसे पूछूं कि आप मोहन को सचमुच अपने साथ सैर को ले जा रहे हैं, बड़ी लज्जा की बात है।"

"पर माता जी, उन्होंने सचमुच कहा है," मोहन गिड़गिड़ाया, "जाने दीजिये, माता जी, मुझे जाने दीजिये, मैं उन की नई कार में अब तक नहीं बैठा, जाने दीजिये—"

पर जब मोहन को अपनी बात का माता को विश्वास दिलाना असम्भव प्रतीत हुआ, तो वह चिन्तित और दुःखी हो उठा—उस के स्वर में निराशा आ गई, आंखों में आंसू झलक आये और मन में क्रोध आ गया।

"अब तुम ही बताओ," उस की माता ने पूछा, "मैं कैसे समझ लूं कि यह कोई वैसा ही झांसा नहीं है जैसा तुम ने उस दिन दिया था ?"

विश्वास जाता रहने का भयंकर अनुभव

बालक दुःख और आवेग से तिलमिला उठा और पैर पीटते हुए बोला, "अब तो जाने ही दीजिये, आप तो जानती ही हैं, उन्होंने स्वयं मुझ से कहा है कि चलो मोहन तुम्हें कार में सैर करा लायें।"

सत्य की विजय

दीवाली से एक-दो दिन पहले की बात है। सभी ओर लोग त्योहार की तैयारियों में लगे हुए थे। प्रत्येक ओर दौड़-धूप मची हुई थी। दिन छिप रहा था। सड़कों पर की बत्तियां जल चुकी थीं "संध्या समाचार, संध्या समाचार, ताजा-ताजा खबरें"—यह थी एक दुबले-पतले लड़के की आवाज। उस की बगल में समाचार पत्र दबे हुए थे। बेचारा फटे-पुराने कपड़े-पहने हुए था, थक कर चूर हो चुका था, और मारे भूख के मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि अब शीघ्र ही जाने की सोच रहा है। एक सफेदपोश वकील साहब के पास से गुजरते हुए उस ने कहा, "संध्या समाचार, लीजिए साहब, ताजा-ताजा खबरें हैं, मूल्य एक आना।" परन्तु वकील साहब इस तरह आगे बढ़ गए, मानो उन्होंने कुछ सुना ही न हो! बेचारा लड़का सड़क पर इधर से उधर और उधर से इधर—"संध्या समाचार संध्या समाचार, ताजा-ताजा समाचार, ताजा-ताजा खबरें"—चिल्लाता फिरता रहा, यहां तक कि उसका गला बैठ गया। अभी तो बगल में बीस समाचार दबे हैं—यह सोच कर उसका दिल टूट गया। वह सोचने लगा कि अभी थोड़ी देर में लोग अपने अपने घरों को चले जाएंगे; सड़क खाली हो जाएगी, मुझे भी तो घर जाना है—परन्तु क्या बिना अखबार बेचे? बिना कुछ पैसे कमाए? बिन-बिके अखबार वापस लेकर? ..... कितनी कठिनाई का सामना था, कितने दुःख की बात थी! आज तो उस ने और दिनों की अपेक्षा अधिक पैसे कमाने की सोची थी। उसे भी तो दीवाली की मिठाई खरीदनी थी। अपनी माता को पैसे देने थे। अपनी छोटी सी प्यारी बुलबुल के लिए कंगनी भी तो ले जानी थी। ...... वह सोचने लगा कि मेरी मां दिन भर कप्तान साहब के घर की सफाई करते-करते और बरतन मांजते-मांजते थक कर चूर हो जाती है, कितना काम करती है, बेचारी। आज समाचार पत्र न बिकने का ध्यान आते ही, उसका मन भर आया। उस दिन दोनों मां-बेटों के पास जितने पैसे थे, उनसे समाचार पत्र खरीद लिए गए थे।

सामने वाला चित्र—दिवाली के उत्सव में आतिशबाजी बच्चों के लिए एक विशेष आकर्षण रखती है।

आशा थी कि सब बिक जाएंगे। परन्तु आज तो भाग्य ही पलट गया। उसके आंसू टपकने लगे। वह बहुत ही दुःखी हो उठा।

"कहो भई सुरेश, तुम अभी तक अपने अखबार नहीं बेच पाए ?"

सुरेश ने गर्दन उठा कर देखा, सामने अमरनाथ खड़ा था। वह भी अखबार बेचा करता था।

"कितने रह गए हैं, सुरेश ?" अमरनाथ ने पूछा।

"बीस" सुरेश ने दुःख और निराशा भरे स्वर में उत्तर दिया।

"बीस !" अमरनाथ चिल्ला उठा, "यह तो सवा रुपए के हुए !"

"हां" सुरेश ने ठंडी सांस भरते हुए कहा "पर बिकते तो नहीं। जान पड़ता है आज किसी को भी समाचार पत्र नहीं चाहिए"—यह कहते-कहते वह और व्याकुल हो उठा, उसके आंसू फिर बहने लगे।

"सुरेश", अमरनाथ ने बहुत पास आकर धीरे से कहा ताकि कोई सुन न ले, "मैं बताऊं तुम्हें मैंने कैसे बेचे ?"

"हां, हां" सुरेश उत्सुकता से बोला, "जरूर बताओ, कैसे ?"

अमरनाथ की आंखों में शरारत चमक उठी। उस ने कहा, "जाओ, सड़क पर इधर-से उधर दौड़-दौड़ कर चिल्लाओ — "बम्बई में एक सुन्दर महिला की रहस्यमय आत्महत्या" — पाकिस्तान में युद्ध की तैयारियां — आज की ताजा-ताजा खबरें"

सुरेश चौंक पड़ा। उस का हृदय सहम गया। उसका हाथ जेब में पहुंचा। जेब में दो चार आने पड़े थे। वह भौंचक्का सा हो अमरनाथ का मुंह ताकने लगा और फिर बोला, "परन्तु, अमरनाथ बोला, "परन्तु, अमरनाथ, ये खबरें तो आज के अखबार में हैं नहीं?"

"हैं तो नहीं" अमरनाथ बोला, "परन्तु तुम रहे डरपोक ही, अरे तुम्हें कोई पकड़ेगा नहीं। जितनी देर में ग्राहक अखबार लेकर उस पर नजर डाले-डाले, इतनी देर में तुम वहां से नौ-दो ग्यारह हो जाना। आधे घंटे के अन्दर-अन्दर बीस-के-बीस न बिक जाएं तो बात, और सवा रुपया खरा!

सुरेश ने गर्दन झुका ली। उसके लिए एक नई बात थी। . . . . . . उसे अपनी प्यारी मां का ध्यान आया, भूखी बुलबुल की याद आई, मां से उधार लिए हुए पैसों का स्मरण हो आया, दीवाली की रंग-बिरंगी मिठाइयां आंखों में घूम गईं . . . . . . सुरेश निर्धन अवश्य था, इसके तन पर चिथड़े अवश्य लग रहे थे, पर उस ने कुछ अच्छी बातें सीखी थीं। उस के मन में झूठ और सच के बीच घोर द्वंद मच गया—मां—बुलबुल, दीवाली की मिठाई—झूठ—सच,—सच—झूठ — दीवाली की मिठाई — —बुलबुल—मां ये सब तीव्रता से ही उसके मन में चक्कर लगाने लगे—उसका मन डांवां-डोल होने लगा—परन्तु उसका सिर उठा और वह गम्भीर स्वर से धीरे-धीरे बोलने लगा—"कभी नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं सवा रुपए के लिए झूठ नहीं बोलूंगा—कभी नहीं—।"

कितना बहादुर था सुरेश! उसके पैर थके हुए थे, पर मन साफ था, वह अपने घर की ओर चला जा रहा था। उसकी मां बेचैनी से उसकी राह तक रही थी। वह घर पहुंचा, उसकी बगल में बिन-बिके अखबार दबे हुए थे। उसकी धैर्यवान मां ने कुछ समझ कर पैसों का तकाजा नहीं किया। जब सुरेश ने उसे अमरनाथ के सुझाए हुए हथकंडों का सारा वृतान्त सुनाया, तो वह सुरेश को सदा उचित बातें करने के लिए अधिक प्रोत्साहन देते हुए बोली, "सुरेश तेरे पिताजी भी सदा ऐसा ही करते थे, यहां तक कि कभी-कभी तो बड़ी तंगी हो जाती थी, पर उनका मन कभी नहीं डिगा, और भगवान भी हमसे यही चाहता है कि वही करें जो ठीक हो। मेरे लाल, तू ने अच्छा किया जो झूठ नहीं बोला।"

"मां" सुरेश बोला, "जब अमरनाथ ने मुझे सुझाव दिया, तो एक बार तो मेरे मन में आ ही गया कि चलो देखा जाएगी, जरा से झूठ से क्या बिगड़ता है, भगवान तो जानता ही है कि मुझे अपनी प्यारी मां और बुलबुल के लिए पैसे चाहिए, परन्तु सहसा मेरे सारे बदन में सनसनी सी होने लगी, पसीना आ गया और यहां (उसने अपने दिल पर हाथ रखते हुए कहा) न जाने फंसा-फंसा-सा लगने लगा, मेरी हिम्मत न हुई कि झूठ बोलूं।"

सुरेश सो गया। प्रायः कहानियों में होता है कि बच्चों के स्वप्नों में परियां आती हैं, परन्तु सुरेश को स्वप्न में कोई परी-वरी दिखाई नहीं दी। वह जब सवेरे को उठा, तो शरीर पर वही फटे कपड़े थे। परन्तु उसके हृदय में शान्ति थी। वह प्रसन्न था कि मैं ने प्रलोभन का तिरस्कार किया।

जब दूसरे दिन तीसरे पहर वह फिर समाचार पत्र-कार्यालय गया तो क्या देखता है कि लड़कों के बीच में खड़ा हुआ अमरनाथ डींगें मार रहा है कि कल मैं ने बात-की बात में छः दरजन अखबार बेच डाले फिर अमरनाथ ने सुरेश की ओर पलट कर कहा कि इस बुद्धू ने सवा रुपया खो दिया, जरा सा झूठ बोलने से डर गया। सारे लड़के सुरेश पर हंसने लगे। यह बात सुरेश को बहुत बुरी लगी; पर करता क्या वह एक, और वे इतने। उसके आंसू टपकने लगे। इस पर लड़के और भी ठट्ठे मार-मार कर चिल्लाने लगे—"लौंडिया है, लौंडिया, डरपोक कहीं का . . ." सुरेश की सिसकियां बंध गईं। लड़कों ने बुरी तरह घेर लिया और लगे तरह-तरह से छेड़ने और चिढ़ाने।

इतने में उधर एक भला आदमी आ निकला और लड़कों की भीड़ को चीरता हुआ कार्यालय में जाने लगा कि उसकी दृष्टि रोते हुए सुरेश पर जा पड़ी। वह रुक गया और फिर सुरेश के पास जा कर बोला, "क्या हुआ, भई ?"

लड़कों में सन्नाटा छा गया। सब की आंखें उस व्यक्ति की ओर उठ गईं। उन में से एक शरारत से बोल उठा, "साहब यह बहुत सच्चा लड़का है, हम सब इसे बात की शाबाशी दे रहे थे कि रोने लगे।"

उस व्यक्ति ने इन शैतानों की ओर घूर कर देखा। फिर सुरेश को अलग ले जा कर पूछने लगा—"क्या हुआ बेटा ? तुम बताओ।"

सुरेश ने सुबकते हुए आरम्भ से अन्त तक सारी बात कह सुनाई।

"शाबाश बेटा"—प्रसन्न होकर उस सज्जन ने कहा, "तुमने बहुत ही अच्छा किया कि झूठ नहीं बोला"

श्री धर्मदास शहर के बहुत बड़े कार-बारी आदमी थे पर उनके हृदय में दया तो मानो कूट-कूट कर भरी थी और वह सच्चाई और ईमानदारी पर जान देते थे। वह मन ही मन कुछ निश्चित करके बोले, "ठीक है, हमें तुम्हारा ही जैसा लड़का चाहिए था, हम बहुत दिन से तुम जैसे सच्चे और ईमानदार लड़के की खोज में थे, तुम काम करोगे, न"?

सुरेश ने आश्चर्य और प्रसन्नता के मिले-जुले भाव से कहा, "ज—जी—जी हां।" उसकी आंखों में कृतज्ञता झलक रही थी।

एक सप्ताह बाद सुरेश ने अपना नया काम आरम्भ कर दिया। निस्संदेह झूठ न बोलने के कारण उसका सवा रुपया जाता रहा था, परन्तु उसे अपनी सच्चाई और ईमानदारी का फल मिल गया। सच्चे बच्चे बड़े होकर भी सच बोलते हैं—टेढ़ी डाल बढ़कर भी टेढ़ी ही रहती है।

बिजली की आंख

सुशीला महीनों से अपने माता-पिता के साथ अमरीका जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। अन्त में वह दिन आ ही गया। ये लोग न्यू-यार्क नगर में पहुंच गए। दूसरे दिन ये सैर करने निकले। घूमते-फिरते जब ये एक बड़ी सी दुकान के दरवाजे पर आए और अन्दर जाने लगे, तो सुशीला ने जल्दी से आगे बढ़कर दरवाजा खोलने को जैसे ही हाथ बढ़ाया, दरवाजा आप-से-आप खुल गया।

"अरे!" वह चकित होकर बोली, "आप ने देखा बाबूजी? यह दरवाजा आप-से-आप ही खुल गया, पर कैसे?"

"कैसे?" उसके पिता ने उसे छेड़ते हुए कहा, "तुम ने खोला होगा, खुल गया, और कौन खोलता?"

"मैं ने तो छुआ तक नहीं, बाबूजी," सुशीला बोली।

"अच्छा, बाहर निकल आओ और फिर तो खोलो," उस के पिता ने सुझाव दिया।

सुशीला बाहर निकल आई, दरवाजा स्वयं बन्द हो गया। वह पलटकर आगे बढ़ी और ज्यों ही फिर खोलने को हाथ बढ़ाया, दरवाजा फिर आप-से-आप खुल गया।

उसके पिता के हाथ बढ़ाते ही दरवाजा फिर आप-से-आप खुल गया।

"यह तो बड़ी अजीब बात है," सुशीला और भी अचम्भे में पड़कर बोली, "अवश्य ही अन्दर कोई आदमी छिपा बैठा होगा जो अन्दर आनेवाले को देखते ही दरवाजे का 'हैण्डल' पकड़कर खींच लेता होगा।"

"यह बात नहीं, सुशीला," उसके पिता ने रहस्य खोला, "बिजली की एक आंख है जो देखती रहती है—आदमी की आंख नहीं, बिजली की आंख—समझी?"

"हैं? बिजली की आंख!" आश्चर्य से सुशीला चीख उठी, "बिजली की आंख कैसी होती है, भला?

"अच्छा तो सुनो, हम तुम्हें समझाने की कोशिश करते हैं," उसके पिता ने कहा, "परन्तु बात है कठिन। दरवाजे की एक ओर बिजली की बत्ती है जो दरवाजे की दूसरी ओर दरवाजे के रास्ते में एक फोटो-इलेक्ट्रिक-सेल (Photo-electric Cell) पर बारीक सी रोशनी फेंकती है। इस से उस में भी 'करंट' पैदा हो जाता है और दरवाजा बन्द रहता है। जब कोई वस्तु या कोई व्यक्ति इस रोशनी के

सामने आता है, तो बिजली का यह 'सेल' टूट जाता और तुरन्त ही छोटे-छोटे अनेक पुर्जे हरकत करने लगते हैं, इस से दरवाजा आप-से-आप खुल जाता है।"

"बड़ी अनोखी बात है," सुशीला बोली, "पर यह समझ में नहीं आता कि बिजली की बारीक सी रोशनी इतने बड़े-भारी दरवाजे को खोल कैसे देती है?"

"तुम जब बड़ी होकर कॉलेज में पदार्थ-विज्ञान (Physics) पढ़ोगी तो ये सब बातें जान जाओगी," उसके पिता ने बताया, "अब तो बस इतना समझ लो कि रेडियो की नलिकाओं जैसी नलिकाओं द्वारा बिजली के कमजोर धक्कों को तेज कर दिया जाता है, यहां तक कि वे इतनी शक्ति पा जाते हैं कि बिजली के एक बटन पर अपना सारा प्रभाव डालने लगते हैं, और यह बटन अपना प्रभाव एक चुम्बक पर जो . . . ."

"समझ गई, समझ गई," सुशीला बीच में ही बोल उठी और मुख पर गम्भीर भाव प्रकट करके बोली, "तो इसे कहते हैं बिजली की आंख!"

"हां इस का यही नाम," उसके पिता ने उत्तर दिया, "क्योंकि यह दरवाजे पर आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को देखती है। हीरे-जवाहरात की दुकानों में ऐसी ही आंखें लगी रहती हैं कि चोर-डाकुओं को पकड़ने में सहायक हों। कहते हैं कि टॉवर ऑफ लन्दन (Tower of London) में शाही ताज के हीरे-जवाहरात की रक्षा ऐसी ही बिजली की आंखों द्वारा की जाती है।"

"बाबूजी," सुशीला ने कहा, "इससे मुझे दादाजी का ध्यान आ गया।"

"अच्छा?" उस के पिता बोले, "वह कैसे?"

"क्योंकि वह भी तो सब देख लेते हैं," सुशीला ने शरारत से मुस्कराते हुए कहा, "इसलिए मैं सोचती हूं कि उनकी आंखें भी बिजली ही की आंखें हैं।"

इस पर उसके माता-पिता दोनों ही खिलखिला कर हंस पड़े और उसके पिता बोले, तुम ठीक ही कहती हो, देख तो वह सचमुच ऐसे ही लगते हैं, और अब ही क्या, अपने बचपन में भी वह ऐसे ही थे, क्या मजाल कि कोई चीज या व्यक्ति उनकी नजर से बच कर निकल जाता! सुनो इसी बात से मुझे ईश्वर की आंख का ध्यान आ गया, वह सब कुछ देखती है, और तुम्हारे दादाजी की आंखों से कहीं अधिक देख सकती है। लिखा है कि ईश्वर 'की आंखें सब स्थानों पर लगी रहती हैं, वे बुरे-भले दोनों को देखती रहती हैं' और 'उसकी आंखें मनुष्य के मार्गों पर लगी रहती हैं, वे उसे पग-पग पर देखती रहती हैं' . . . ."

"तब तो ईश्वर की आंख ने मुझे भी इस दरवाजे में से गुजरते देखा होगा।" सुशीला बोली।

"हां, वह हमें प्रत्येक स्थान पर देखता है," उसके पिता ने उत्तर देते हुए कहा, "इस पृथ्वी पर हम कहीं भी क्यों न जाएं, सुशीला, उसकी आंखें हमारा पीछा करती रहती हैं क्योंकि 'ईश्वर की दृष्टि सारी

सामने वाला चित्र—लोअर न्यूयार्क के गगन-चुम्बी भवन

U.S.I.S.
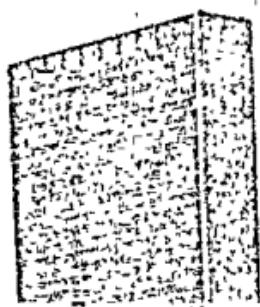
पृथ्वी पर दौड़ती हैं।' अब तुम समझ गई होंगी कि ईश्वर की आंखें हर कहीं, हर चीज को, और हर किसी को देखती रहती हैं।"

"मैं ने तो पहले कभी ऐसी विचित्र बात नहीं सुनी थी," सुशीला बोली, "इससे तो ऐसा लगता है कि हमें हर हालत में और जगह सावधान रहना चाहिए, है न?"

"हां," उसके पिता बोले, "बहुत ही सावधान।"

"तो फिर ईश्वर के भी बिजली ही की आंखें होंगी," सुशीला बोली।

"इस से भी कहीं अधिक विचित्र!" उसके पिता ने संकेत किया, "एक स्थान पर ईश्वर का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'उसकी आंख आग की ज्वाला की भांति है' . . . ."

"यह तो इस दरवाजे वाले प्रकाश की किरण सा ही कुछ हुआ," सुशीला ने कहा।

"जहां" उसके पिताजी बोले, "पर उससे लाखों गुना तेज, क्योंकि ईश्वर की आंख न केवल बाहर-ही-बाहर सब कुछ देखती है, बल्कि मनुष्य के हृदय में भी झांकती रहती है कि वहां क्या हो रहा है।"

"अब अन्दर चलें, बाबूजी?" सुशीला ने कहा।

"हां भाई, हम तो यहीं बाहर खड़े रह गए, चलो," उसके पिता बोले।

सुशीला अन्दर प्रत्येक वस्तु को कुतूहलपूर्वक देखती चल रही थी, परन्तु उस के मन में ईश्वर की सब-कुछ-देखनेवाली आंख की बात चक्कर लगा रही थी, उसे ईश्वर की समीपता का अनुभव हो रहा था।

क्रोध पर नियंत्रण

एक पुरानी कहावत है कि जो मनुष्य अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं रख पाता, वह सर्वथा उस नगर के समान होता है जिस का परकोटा तोड़-फोड़ डाला गया हो। स्पष्ट है कि जिस समय यह कहावत बनी होगी, उस समय नगरों तथा ग्रामों की रक्षा परकोटों द्वारा ही की जाती होगी, क्योंकि उस समय क्रूर शत्रु देश भर में फैल कर लूट-मार करते-फिरते थे। यदि परकोटे न बनाए जाते, तो लोग सर्वथा अरक्षित रह जाते। इन परकोटों में बड़े-बड़े फाटक होते थे जो रात को और खतरे के समय बन्द कर दिए जाते थे। परन्तु इस कहावत में ऐसे भयंकर व दृढ शत्रुओं की कल्पना की गई है, जिन्होंने किसी नगर के परकोटे को तोडफोड़ डाला है, अन्दर घुस आये है और भवनों और इमारतों को ढा दिया है। जिधर देखो ध्वंस व विनाश हो रहा है; जहां जाओ लूट-खसोट मची हुई है; सुख शांति का सर्वथा अन्त हो गया है; हृदयों में आतंक व भय छाया हुआ है, दुःख-संकट ने आ घेरा है और लोग भयभीत हो कर सोच रहे है कि देखिये पल भर में क्या होता है।

बिलकुल यही दशा है उस की जो अपने क्रोध को नियंत्रित नहीं रख सकता। यदि पुरुष हुआ तो सम्भव है कि अपनी पतिव्रता पत्नी के कोमल हृदय को अपने कटु शब्दों द्वारा छलनी कर डाले; या क्रोध में आकर किसी के प्राण ले ले। यदि बड़ा लड़का हुआ, तो हो सकता है कि जरा सी बात में आपे से बाहर हो जाये और अपने किसी साथी की "मरम्मत कर डाले"। यदि बालक हुआ, तो कदाचित् जमीन पर लोटने लगे, पैर पटकने लगे और गला फाड़ने लगे। गोद का बच्चा गुस्से में भर कर अपने सारे शरीर को अकड़ा लेता है और सारा जोर लगा कर रोने-चिल्लाने लगता है।

अवश्य ही यह माता-पिता और शिक्षक-शिक्षिकाओं का कर्तव्य है कि आत्मनियंत्रण रूपी परकोटे के निर्माण में बालक की सहायता करें, जिस से ऐसा न हो कि वह उक्त कहावत वाले नगर की सी दुर्दशा को प्राप्त हो, और यह कार्य जितनी जल्दी आरम्भ किया जाये, उतना ही बच्चों से सम्बन्धित

लोगों के लिये अच्छा होता है। अन्य दूसरी आदतों की तरह, जब बार-बार आने से आदत हो जाने की और जरा-जरा सी बात पर भल्ला उठने की बान जब पड़ जाती है, तो उस का छुड़ाना कठिन हो जाता है। किसी कार्य को बार-बार करने से उसे करने का स्वभाव बन जाता है। पड़ी हुई आदत की अपेक्षा किसी आदत के पड़ने से बचना बहुत सरल होता है।

माता-पिता को "सिखाना-संभालना"

कदाचित् हम कहें कि क्रोध और चिड़चिड़ापन तो जन्म से होता है। हां, हो सकता है, परन्तु इस में दोष किस का है? कदापि नहीं।

हरबर्ट हूवर ने जो कभी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति थे, कहा कि बहुत से माता पिताओं के लिए यह बात आवश्यक है कि उन्हें "बच्चों ही के समान सिखाया-संभाला जाए।" एक व्यक्ति अपने चिड़चिड़े स्वभाव के कारण प्रायः चिन्तित रहा करता था। उस ने किसी विद्वान से पूछा कि मैं अपने चिड़चिड़े स्वभाव का क्या इलाज करूं? उस विद्वान ने उत्तर दिया—"तुम्हारे लिये एक मात्र यही इलाज है कि तुम किसी और को अपना दादा बना लो।" यद्यपि माता-पिता परिवार के बड़े-बूढ़ों के बुरे स्वभाव का तो सुधार नहीं कर सकते, परन्तु कम-से-कम इतना तो सम्भव है कि आगे को सावधान रहें और संतान-उत्पत्ति के उचित व उपयोगी सिद्धान्तों को सीख लें जिस से परिवार के भावी सदस्य तो अपेक्षित ढंग के हों। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिशु के जन्म के पूर्व ही होने वाली माता की उचित देख-रेख द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। इस में पिता का दायित्व भी कुछ कम नहीं।

होने वाली माता का आहार और उस की देख-रेख

शिशु के जन्म से पूर्व ही बहुत सी होने वाली माताओं का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है और लड़ने-झगड़ने को तो मानो हर समय ही तैयार रहती है। इस का कारण प्रायः होता आहार में पौष्टिक पदार्थों की कमी और यह न जानना कि गर्भावस्था में स्त्री के लिये उचित आहार क्या होता है। गर्भ में बढ़ते हुये शिशु को यदि माता के आहार द्वारा आवश्यक तत्व नहीं प्राप्त होते, तो वह माता के ऐन्द्रिक-पदार्थों से अपने आवश्यक आहार की कमी को पूरा करता है। इस दशा में माता शारीरिक दुर्बलता अनुभव करने लगती है। हो सकता है कि उस के दांतों और उस की हड्डियों पर इस का दुष्प्रभाव पड़े। गर्भवती स्त्री के आहार में पोषक तत्वों (Vitamins) और खनिज पदार्थों की प्रचुर मात्रा होनी चाहिये, विशेष कर "कैलशियम" की। मुख्य आहार-सामग्री यह है—दूध, मोटा अनाज, अण्डे★ फल और हरी तरकारियां। गर्भवती स्त्री के आदर्श आहार में, विशेष कर पहले हुए महीनों में, कम-से-कम एक सेर दूध तो प्रतिदिन होना चाहिए।

गर्भवती स्त्री के लिए अत्यन्त आवश्यक बात है खूब आराम करना, नींद भर सोना, खुली हवा में घूमना-फिरना और हलका-फुलका व्यायाम करना, पर्याप्त मात्रा में पानी पीना, और साथ-ही-साथ पेट को नियमित रूप से साफ रखना। यदि इन नियमों पर सच्चे मन से चला गया, तो गर्भवती स्त्री की मानसिक स्थिति अधिक ठीक रहेगी और फल यह होगा कि वह आये-दिन की क्रोधोत्पादक बातों को शांतिपूर्वक टाल जायेगी।

कदाचित् आप ने "सेम्सन" का नाम तो सुना ही होगा। इस की कहानी बाइबल की एक पुस्तक में है। इस व्यक्ति के नाम मात्र से ही एक अत्यन्त बलवान और विशालकाय पुरुष का चित्र आंखों में फिर जाता है। लिखा है कि "सेम्सन" के जन्म से पूर्व ही उस की माता को यह स्वर्गीय आदेश प्राप्त हुआ था—"सो अब चौकस रहे कि न तू दाखमधु व और किसी भांति की मदिरा पिये, और न कोई अशुद्ध वस्तु खाये।" अतः यदि होने वाली माता के लिये मादक पेयों के सेवन से बचना इतना आवश्यक है, तो यह भी उतना ही आवश्यक है कि उत्तेजनोत्पादक भोजन से भी बचा जाये। सब से बढ़िया बात तो यह है कि गर्भवती स्त्री सदा प्रसन्न-चित्त रहे और क्रोध को पास न फटकने दे।

सुधार वही जो समय पर हो

किसी विद्वान लेखक का कथन है—"माता-पिता समय पर सुधार आरम्भ नहीं करते। बालकों के प्रथम क्रोध-प्रदर्शन की अपेक्षा हुई, और बालक ढीठ और हठी होने लगे; फिर ये ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों ढिठाई और हठ बढ़ती और जड़ पकड़ती जाती है। माता-पिता को चाहिये कि जब बच्चा गोद में ही हो, तब ही से उसे अनुशासन का प्रारम्भिक पाठ सिखाना आरम्भ कर दें। बालक को सिखाई कि वह अपनी हठ छोड़ कर आप का कहना माने। किन्तु यह हो उसी दशा में सकता है कि आप निष्पक्षता से काम लें और अपने आदेशों में दृढ़ता प्रकट करते रहें।"

बालक को आरम्भ से ही सीखना चाहियें कि हठ पूरी नहीं हो सकती। छोटा बच्चा प्रत्येक परिवार में सभी का लाडला होता है; अतः बहुत से परिवारों में वह "हूं-हां" करने के बहुत पहले से ही सब को तिगनी का नाच नचाये रखता है। वह सीख लेता है कि यदि मेरी कोई इच्छा पूरी नहीं हुई तो रो दूंगा; और वास्तव में होता भी ऐसा ही है, वह जरा सा रोया नहीं कि सारा परिवार एक पैर से खड़ा है।

यह बात तो सभी जानते हैं कि छोटे बच्चे का ध्यान रखना चाहिये और यह भी जानते ही हैं कि माता-पिता को अपनी ओर आकर्षित करने का एक मात्र साधन होता है बच्चे का रो देना। अतः जिन लोगों पर शिशु की देख-रेख का दायित्व हो, उन्हें चाहिये कि कभी भी बच्चे की ओर से लापरवाही न बरतें, क्योंकि कोई नहीं चाहता कि बच्चे को रोने की आदत पड़े। इसलिये बच्चे को खिलाने-पिलाने, सुलाने, नहलाने आदि सभी का नियमित रूप से बंधा हुआ समय होना चाहिये। प्रति दिन भोजन का समय होने से कुछ देर पहले स्वयं आप की आंतें कुलबुलाने लगती हैं। ऐसा क्यों होता है?

फल स्वास्थ्य प्रदान करते हैं

इसलिये कि आप को उस समय पर खाने की आदत है। और आप का पेट सामान्य रूप से उसी समय भोजन प्राप्त करने का आदी हो गया है। इसलिए भोजन का समय होते-होते आप का पेट बोलने लगता है। बिलकुल यही दशा बच्चे के पेट की होती है। कुछ घंटे बीत जाने के पश्चात् उसका पेट उस से कहता है कि भई मुझे भूख लगी है। बच्चा रोता है। अत: उस के रोने से पूर्व ही उसे कुछ खिला-पिला देना चाहिए। इसी प्रकार गीला पोतड़ा भी उस के रोने से पहले ही समय-समय पर बदल देना चाहिये। सारांश यह कि उस की समस्त शारीरिक आवश्यकताएं समय-समय पर पूरी कर दी जाएं। याद रखिये यदि बच्चे का आहार अपूर्ण हुआ, तो उस का पोषण भी अपूर्ण रहेगा और फिर यदि उस के स्वभाव में क्रोध और चिड़चिड़ापन आ जाए तो इस में उस का दोष नहीं।

शिशु का आहार

शिशु का आहार असंतुलित होने की दशा में हो सकता है कि आहार में विटामिन "सी" और "डी" की कमी हो। इस दशा में अंडे* की जर्दी और उचित प्रकार की तरकारियों को शुरू कर देना चाहिये। संतरे और टमाटर के रस में विटामिन "सी" होता है और मछली के तेल में "डी"

फलों का रस बच्चे को पिलाने से पहले भली भांति छान लेना चाहिये और खौला हुआ किन्तु ठंडा पानी मिला कर पतला कर लेना चाहिये। अंडे को इतनी देर उबालना चाहिये कि उस की जर्दी अधिक न पक कर भुरभुरी रहे। फिर खिलाने से पहले उसे चम्मच से दबा-दबा कर हलवा सा बना लेना चाहिये। कुछ बालकों को अंडा अच्छा नहीं लगता। ऐसी दशा में पहले-पहले थोड़ा-थोड़ा खिलाने का प्रयत्न करना चाहिये, और यदि अंडा बच्चे की प्रकृति के अनुकूल न हो, तो फिर अंडा बिलकुल बन्द कर दिया जाये।

एक मास का हो जाने पर शिशु को प्रति दिन दो चाय के चम्मच भर नारंगी का रस देना चाहिये और इस की मात्रा इस प्रकार थोडी बढ़ती जानी चाहिये कि आठ महिने का होते-होते दिन भर में उसे दो-दो बार बड़े चम्मच भर रस दिया जाये। मछली का तेल (कॉड लिवर-आयल) या फिर इस का कोई अन्य प्रतिहस्त इसी रीति और इसी क्रमिक मात्रा में देना चाहिए।

जब बच्चा चार मास का होने लगे तो दिन भर में एक बार भली भांति पका और छान कर गेहूं आदि का दलिया देना चाहिये। यदि इस से पूर्व नहीं तो इस समय से भी अंडे की जर्दी देनी आरम्भ की जा सकती है। जब बच्चा पांच महीने का हो जाये, तो उसे भली भांति उबली हुई और छंटी-छनी सब्जियां देनी चाहिये। परन्तु इस प्रकार की चीजें थोड़ी-थोड़ी और क्रमिक रूप से खिलानी चाहियें—पहले-पहले चाय के चम्मच भरसे अधिक न हों। इस प्रकार व्यवस्थित आहार और माता का दूध दोनों मिल कर बच्चे के शारीरिक विकास और स्वास्थ्य वृद्धि में सहायक होते हैं—यह ही नहीं, अपितु मृदु-स्वभाव का निर्माण भी प्रत्याभूवित होता है।*

क्रोध का प्रदर्शन

बच्चे में थोड़ी-बहुत समझ आते, ही, उस में जता दीजिये कि झुंझलाना और क्रोध करना अच्छी बात नहीं—उस के क्रोध-प्रदर्शन का सर्वदा निरनुमोदन कीजिए। इतना ही कह कर न रह जाइए कि—नहीं, नहीं मुन्ने, बुरी बात।—अपितु सिर हिला कर और मुख पर अप्रसन्नता के चिन्ह प्रकट कर के उसे क्रोध करने से रोकिये—इस प्रकार नन्हे बालक पर अपेक्षित प्रभाव होता है। चाहे कुछ ही क्यों न हो, परन्तु जिस वस्तु को बालक क्रोध कर के मांगे और उसे लेने के लिये जबरदस्ती करे, उसे वह वस्तु कदापि न दीजिये।

★अंडा और मछली का तेल केवल उन परिवारों के लिये, जहां इन के उपयोग में कोई परहेज न हो।

★शिशु के पालन-पोषण से सम्बंधित अतिरिक्त जानकारी के लिये डा. Belle Wood-Comstock द्वारा लिखित All About the Baby नामक पुस्तक Oriental Watchman Publishing House, Post Box 35 Poona 1 से मंगवाइये।

अच्छा मान लीजिए कि जब बच्चा छोटा था तब तो माता-पिता ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया, और अब जब वह दो, तीन या चार महीने का हो गया, तो ? माता-पिता ने तो बालक की जिद पूरी कर दी "झमेला न हो," परन्तु याद रखने वाली बात यह है कि जिस क्रोध में आकर बालक ने खिलौना तोड़-फोड़ डाला हो, वैसे की क्रोध में वह बड़ा हो कर किसी के प्राण भी ले सकता है। यदि नौबत यहां तक न भी पहुंची, तो भी हो सकता है कि वह अपने बीवी-बच्चों को डरा-डरा कर उन के दम निकाले रक्खे, या किसी अन्य दुर्बल व्यक्ति पर आतंक जमायें, अत्याचार करे। इस प्रकार के दोष की या किसी और गम्भीर दोष की उपेक्षा करना इस बात का द्योतक है कि माता-पिता को अपनी संतान की भलाई नहीं चाहिये। इस की तो कल्पना भी न कीजिये कि इस प्रकार का दोष बच्चे के बड़े हो जाने पर आप से आप से आप निकल जायेगा। बच्चा कुछ लोगों से ऐसे दोष छिपा भले ही ले, परन्तु जब तक उसे इस गंदी आदत को छोड़ देने की सीख न दी जाये, तब तक उस का स्वभाव नहीं बदलता।

जब बालक समझदार हो जाये, तो उस से उस के क्रोध प्रदर्शन के विषय में बात-चीत कीजिये। परन्तु बात तब की जाये, जब बच्चा आपे में हो, शांत हो। साधारण शब्दों में उसे समझाइये कि उस प्रकार भड़क उठने से आदमी स्वयं अपनी आंखों में गिर जाता है। ऐसे-ऐसे महापुरुषों की कहानियां सुनाइये जो अपने धैर्य के कारण प्रसिद्ध हो। उस के मन में यह बात बिठाने का प्रयत्न कीजिये कि वे महापुरुष कितने सहासी और कितने बलवान थे। सजग माता सदा ऐसी कहानियों की खोज में रहती है और बालक को समझाती है कि कठिन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए। यदि आप के बच्चे को क्रोध दिखाने की बान पड़ गई हो, तो यह आशा न रखिये कि एक दिन, या एक सप्ताह ही में उस का सुधार हो जायेगा।

बच्चों को पाल कर दयालु तथा धैर्यवान स्त्री-पुरुष बनाने में ईश्वर से नित्य प्रार्थना करना, बालक की आदतों का अध्ययन न करना और लगातार उस की देख-रेख रखना आवश्यक होता है।'

अनियंत्रित हो जाना कितनी भयंकर बात होती है।

कुछ ही समय पहले की बात है कि एक दिन शाम को झुटपुटा हो जाने के बाद सहसा घर्र-घर्र के शब्द, किसी कठोर वस्तु के टूटने-फूटने का सा शोर, फिर लोगों की घबराई हुई आवाजों से हम लोग चौंक उठे। दौड़े हुए खिड़की के पास गए और लगे बाहर झांकने कि आखिर हुआ क्या ? कुछ लोग "टोर्चें" ले कर घटना-स्थल पर पहुंच चुके थे। उन्हीं की बत्तियों की रोशनी में हमें एक बड़ा सा ठेला दिखाई दिया, देखा कि एक बड़ा सा ठेला हमारे पड़ोसियों के घर के रास्ते के बीचों-बीच खड़ा है। मालूम हुआ कि "ड्राइवर" ठेला यहां से कुछ ऊपर चढ़ाई पर खड़ा करके कहीं चला गया था। अगले पहियों के नीचे लगाये हुए पत्थर किसी प्रकार अपने स्थान से खिसक गये और पहिए घूमने लगे। खैर तो यह हुई कि पहिए दाईं ओर मुड़ गए और लुढ़कता हुआ ठेला पास के एक खेत में को हो लिया। यहां

R. Krishnan

बालक जब छोटा ही हो तब ही उसे आत्म नियंत्रण की शिक्षा दी जाये

से फिर इस तरह मुड़ा कि बड़ी सड़क के समानान्तर कच्चे रास्ते पर हो लिया। हमारे पड़ोसियों के घर और खेत के बीच एक दीवार थी, उस से जा टकराया, जिस का अधिकांश भाग टूट गया और पहियों ने आगे निकल कर बगीचे में गुलाब के सुन्दर-सुन्दर पौधों को कुचल डाला। वहां की जमीन नर्म थी उस में दोनों पहिए धंस गए और ठेला रुक गया। हम सोचने लगे कि यदि दुर्भाग्यवश ठेला ढाल पर सीधा लुढ़कने लगता तो मोटर, गाड़ियों, पैदल-चलने वालों का क्या बनता, और उस मकान का क्या होता जो उतराई के बाद ही सड़क के मोड़ पर खड़ा था।

अनियंत्रित क्रोध

यह आप-से-आप लुढ़कता हुआ ठेला सर्वथा ऐसा ही था जैसे अनियंत्रित क्रोध होता है। ठेले को रोकने वाला कोई नहीं था जिधर को पहिए मुड़े उधर ही को हो लिया, उस की बला से कोई मरे-पिसे या कुछ टूटे-फूटे। यह तो कुछ ईश्वर की ही कृपा हो गई कि रुक गया, नहीं तो न मालूम कितनों के प्राण जाते और कितनी हानि होती।

बच्चों के मन में इच्छाएं होती हैं और जब उन की किसी इच्छा का विरोध किया जाता है, तो उन्हें क्रोध आ जाता है। यह तो ठीक है कि जब तक बालक की किसी इच्छा पूर्ति से किसी हानि की आशंका न हो या कोई नियम भंग न होता हो, तब तक उस की इच्छा का विरोध करना उचित नहीं। परन्तु फिर भी प्रत्येक बालक को यह बात सीखनी चाहिए कि सदैव ही हर बात पूरी नहीं हो सकती, और फिर यह बात उचित भी नहीं कि बालक जो चाहे वही हो जाये। ईश्वर ने बालकों के पथ-प्रदर्शन सी न होती तो वह जमीन पर लोटने, लातें फेंकने और चिल्लाने लगता था। शिक्षिका उसे समझाती, और दण्ड भी देती। परन्तु टूटू पर उस के समझाने तथा दण्ड देने का कोई प्रभाव न पड़ा। स्थिति के लिए माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिका का प्रयोजन किया है। अतः माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिका तुरन्त ही बालक के मन को दूसरी ओर लगा सकते हैं, और कुछ न हो तो कोई कहानी ही सुना दें जिस से उस का ध्यान पलट जाये।

कुछ नन्हें बालक ऐसे भी होते हैं जो यही चाहते हैं कि घर के लोगों में से कोई न कोई बस आठों पहर हमें खिलाने में लगा रहे। फिर जहां उन्हें अकेला छोड़ा और वे क्रोध तथा झुंझलाहट का प्रदर्शन करने लगे। ऐसी दशा में बेहतर यही है कि बालक को बिलकुल अकेला छोड़ दिया जाये, क्योंकि जब वह इस प्रकार अपनी बात बनते नहीं देखेगा, तो अपने मन में समझ लेगा कि क्रोध करना लाभकारी नहीं।

उपरोक्त बात एक शिक्षिका द्वारा निर्दर्शित की गई है। यह शिक्षिका एक ऐसी पाठशाला में पढ़ाती थीं जहां बहुत ही छोटे-छोटे बच्चे पढ़ने आते थे।

गुस्सैल बालक

टूटू केवल चार वर्ष ही का था पर था बड़ा बिगड़ा हुआ बच्चा। जब कभी उस के मन की सी न होती तो वह जमीन पर लोटने, लातें फेंकने और चिल्लाने लगता था। शिक्षिका उसे समझाती, और दंड भी देती परन्तु टूटू पर उसके समझाने तथा दंड देने का कोई प्रभाव न पड़ता। स्थिति को भली भांति समझ कर शिक्षिका ने निश्चय कर लिया कि अब की बार जब वह ऐसा करेगा तो मैं ध्यान ही न दूंगी। टूटू ने अपने स्वभाव के अनुसार एक दिन फिर मचलना आरम्भ कर दिया, परन्तु शिक्षिका भी अपने निश्चय में अटल निकली। उस ने ऐसा जताया मानो कुछ हुआ ही नहीं, और अन्य बालक जो रोना-चिल्लाना सुन कर अपनी-अपनी गर्दन उचका-उचका कर देखने लगे थे, उन्हें उस ने संकेत किया कि अपना काम करते रहें, और वह स्वयं भी अपने काम में लगी रही

थोड़ी देर में शोर हल्का पड़ता गया। परन्तु शिक्षिका ने फिर भी कोई ध्यान न दिया। अन्त में टट्टू फर्श पर से उठ कर चुपके से अपने स्थान पर बैठ गया। शिक्षिका भांप गई कि बस यह इस का अन्तिम फेल है।

घर में जब बालक मचले और फेल दिखाये तो उस के पास हट जाना चाहिये और यदि हो सके तो दूसरे कमरे में अकेला छोड़ देना चाहिए जिस से उस का आवेश ठंडा पड़ जाये। कभी-कभी क्रोधित बालक के मुंह पर ठंडे पानी का छपका मारने से उस के होश ठिकाने आ जाते हैं। देर तक क्रोध में मचलते रहने की अपेक्षा करना कम हानिकारक सिद्ध होता है। जब बालक शांत हो जाये तो उस के कपड़े को देखना चाहिए, यदि भीग गये हों तो बदल देना चाहिए। बहुत सम्भव है कि इन के बाद वह सो जाये।

ध्येय है आत्म-प्रशासन

बालक से इस प्रकार का व्यवहार कीजिए कि उसे अपने क्रोध का कारण ज्ञात हो जाए। आत्म-नियंत्रण में उन की सहायता कीजिए। होते-होते वह अपने आप उचित तथा अनुचित बात को पहिचानना सीख जायेगा और सूझ-बूझ तथा ईश्वर की सहायता से आत्म-नियंत्रण सीखेगा। अतः माता-पिता का यही प्रयत्न होना चाहिए कि बालक स्वयं ही ये बातें परखे और सीखे तथा अपना ध्यान प्रशासन पर रक्खे।
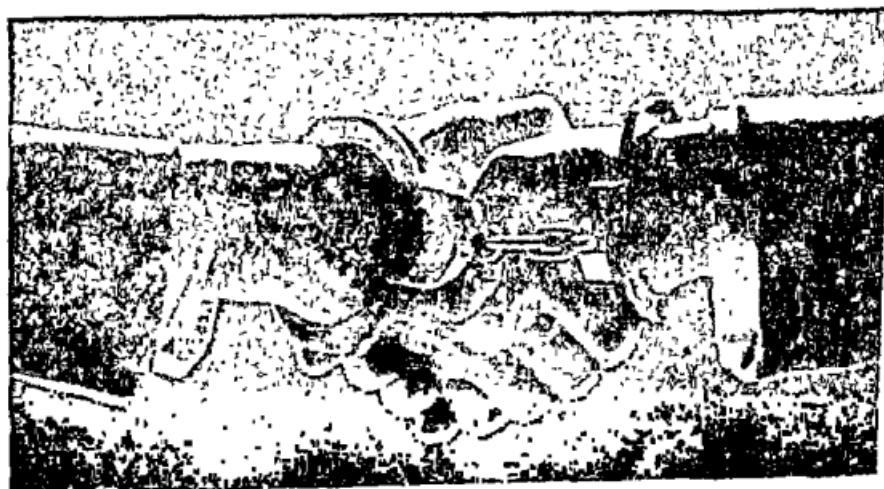
U.S.I.S.

अस्वस्थ बालक को बिगाड़िए नहीं। जहां तक हो अनुशासन बनाये रखिए, क्योंकि स्वस्थ बालक की अपेक्षा अस्वस्थ और चिड़चिड़े स्वभाव वाले बालक के लिए प्रेममय अनुशासन अधिक आवश्यक है। चिड़चिड़े और क्रोधपूर्ण स्वभाव का कारण, यदि कोई शारीरिक दोष हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न कीजिए। ऐसे बहुत से बालक देखने में आये हैं, जिन के चिड़चिड़े स्वभाव तथा गुस्सैल-पन का कारण आंख कान के दोष पाये गये हैं।

जब बालक पाठशाला में भरती किया जाये, तो स्वभाव आदि के सुधार में शिक्षिका का सहयोग प्राप्त कीजिए। यदि स्थिति शिक्षिका की समझ में आ गई तो वह सहर्ष आप की समस्या के समाधान में भरसक सहयोग देगी। क्रोध द्वारा बच्चे का सुधार करने का प्रयत्न न कीजिए। माता-पिता का क्रोध बालक के क्रोध को कदापि शांत नहीं कर सकता, अपितु परिणाम इस के विरुद्ध ही होता है। परन्तु माता-पिता का धैर्य बालक के सुधार में बहुत कुछ सहायता देता है। मारना, पीटना, झंझोड़ना, चिढ़ाना और बुरा-भला कहना बालक में क्रोध की ज्वाला और प्रज्वल्लित कर देता है। और फिर सच तो यह है कि झंझोड़ना, चिढ़ाना भले माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिका को शोभा भी नहीं देता।

यदि आप का बालक गुस्सैल स्वभाव का हो, तो निराशा की कोई बात नहीं। उस का यही स्वभाव, और यही हठीलापन किसी दिन नियंत्रित रूप में किसी भले कार्य में सहायक सिद्ध हो सकता है। मान लीजिए कि कोई बालक बाल्यावस्था में बड़ा हठी और गुस्सैल रहा हो। बड़ा हो कर यही बालक किसी अन्य व्यक्ति के किसी कुकर्म (जैसे कोई पिता अपने भूखों मरते बाल-बच्चों की परवाह न कर के पैसा-पैसा मद्यपान में उड़ाता हो।) के प्रति घोर घृणा प्रकट करता है और उस से कुकर्म के त्यागने के लिए अनुरोध करता है। क्या आपने सोचा है कि वयस्क होने पर अनुचित बातों के तिरस्कार और बाल्यावस्था के हठी तथा क्रोधपूर्ण स्वभाव में क्या सम्बन्ध है? स्वभाव में दृढ़ता तो वही है, परन्तु नये रूप निश्चय का रूप धारण कर लिया है। कार्य-प्रवृत्ति, शारीरिक बल, दृढ़ संकल्प, और चित्त-वृत्ति की तीव्रता इस सम्बन्ध की ओर संकेत करती है। इस बात की चेष्टा कीजिये कि कार्य प्रवृत्ति की मन की तीव्रता और शारीरिक बल आत्म संयम में काम आये, न कि स्वार्थ पूर्ण क्रोध में परिणाम हो। नियंत्रित रूप में विद्युत कैसे-कैसे चमत्कार कर दिखाती है, परन्तु अनियंत्रित रूप में विनाश व ध्वंस का कारण बन जाती है।

माता-पिता और शिक्षकों के लिए है तो यह एक समस्या, परन्तु है बालक-बालिकाओं के पथ-प्रदर्शन की।

कटु वचन

"आओ रवि खेलें," कुमुद ने कहा, "तुम राम मामा बनो और मैं माता जी ! मैं तुम्हारे यहां मिलने आऊंगी और . . . ."

"छि, छि," रवि ने अपनी बहन की बात काटते हुए, तिरस्कारमय स्वर में कहा, "यह तो लड़कियों का खेल है, क्या बेहूदा खेल सूझा है, खेलती हो, तो आओ, सिपाही-सिपाही खेलें, कितना बढ़िया खेल है।"

"मेरा खेल तुम्हारे खेल से अधिक बेहूदा नहीं !" कुमुद बोली, "और फिर सरल भी कितना है। जाओ मैं खेलती ही नहीं," न खेलने का निश्चय कर कुमुद यह कहती हुई सीढ़ियों पर बैठ गई।

"कितनी बुरी हो तुम," रवि चिढ़ कर बोला, "आलसी कहीं की, नहीं तो सिपाही-सिपाही खेलने को क्यों मना करती ? मैं तो सारा दिन खेलता रहूं और जी न भरे, आ खड़ी हो, खेलें।"

"मुझ से नहीं खेला जाएगा, कुमुद ने मुंह पर पड़े हुए बालों को हटाते हुए कहा, "इतनी तो गर्मी है और मैं फिर थक भी बहुत गई हूं।"

"थक गई—छि, छि" रवि ने कटाक्ष किया, "चल आलसी कहीं की।"

"मैं आलसी नहीं हूं," कुमुद ने कहा, "तू ही होगा।"

"तो आ खेल," रवि ने कहा।

"मैं तो अपना बताया हुआ खेल खेलूंगी," कुमुद ने कहा, "मुझे तुम्हारा खेल अच्छा नहीं लगता।"

इस पर रवि का क्रोध बढ़ गया।

"चल,चल चुड़ैल कहीं की," उस ने कहा, "मैं अब तेरे साथ कभी भी नहीं खेलूंगा, चाहे तू मर ही क्यों न जाए।"

रवि को आवेश में इस बात की सुध न रही कि मैं क्या कह रहा हूं। वह अपने क्रोध को रोक न सका, बुरी भली जो मुंह में आई, कह गया। चाहता तो ऐसी बातें न कहता, पर उसे तो मानो एक प्रकार की जिद चढ़ गई थी।

"जो चाहे कहते रहो, मुझे क्या," कुमुद ने शांतिपूर्वक कहा, "पर मैं सिपाही-सिपाही तो खेलने की नहीं।"

दिन-प्रतिदिन कुमुद की दशा बिगड़ती गई रवि बहन को देखना चाहता था। परन्तु डाक्टर की आज्ञा न थी कि रोगी के कमरे में किसी प्रकार का कोई शोर हो तथा उस के माता-पिता के अतिरिक्त और कोई वहां न आने पाए। रवि की व्याकुलता बढ़ती जाती थी। उसका मन बार-बार चाहता था कि यदि कुमुद क्षमा कर देती, तो अच्छा होता। वह अपने कटु वचनों को न भूल सका। अपनी सगी बहन के प्रति ऐसे कठोर शब्द उसके मुंह से निकल ही कैसे गए उस की समझ में कुछ भी न आता था, और फिर एक ही तो बहन थी।

डाक्टर ने जवाब दे दिया। उन्होंने कहा मैं जो कुछ कर सकता था, मैंने कर लिया, पर अब बात मेरे बस की नहीं। लड़की बहुत खतरे में। जब रवि ने यह सुना तो उसने अपने मन में ठान ली कि चाहे कुछ भी क्यों न हो मैं कुमुद को देखने अन्दर अवश्य जाऊंगा; बिना बहन से क्षमा मांगे मेरे मन को शांति प्राप्त नहीं हो सकेगी। उसे याद आया कि कुमुद कह रही थी कि मैं थक गई हूं—कदाचित् वह थकावट आनेवाले रोग का द्योतक होगा। मैंने उसे आलसी कहा था। वह अच्छी-खासी थी, कितना मूर्ख हुआ!

कुमुद के कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। रवि ने बहन को देखने की अनुमति मांगी। उसके माता-पिता ने इस स्थिति में उसे नहीं रोका।

रवि पलंग के पास जा खड़ा हुआ और उसने लेटी हुई अपनी बहन के पीले चेहरे पर आंखें गाड़ दीं। रवि की आंखों से मोटे-मोटे आंसू टपकने लगे। एक ही सप्ताह की बीमारी ने क्या-से-क्या कर दिया!

"कुमुद मुझे क्षमा कर दो, मेरी अच्छी बहन," घुटने टेककर पलंग की पट्टी से लगकर बैठते हुए रवि ने कहा, "तेरे बीमार होने से पहले मैं तुझे न मालूम क्या-क्या कह बैठा था। मुझे बड़ा दुःख है। मुझ से अब अधिक सहा न जाएगा। कर दिया न तूने मुझे क्षमा?"

"मेरा प्यारा सा भैया," कुमुद ने बहुत धीमे स्वर में कहा। उसकी आंखों से भाई के प्रति प्रेम उमड़ पड़ा। रवि ने झुक कर अपना कपाल बहिन के कपाल पर रख दिया।

धीरे-धीरे कुमुद की आंखें बन्द होने लगीं। सब ने यह सोचा कि अन्तिम क्षण निकट आ गए। डाक्टर ने रवि को अलग कर लिया . . . . परन्तु यह मृत्यु नहीं थी! थोड़ी देर बाद कुमुद ने आंखें खोल दीं और उसके मुख पर मुस्कान थी। उसने कहा कि मुझे नींद आ रही है। वह सो गई। यह मृत्यु-निद्रा नहीं थी वरन् जीवनदायिनी निद्रा थी। डाक्टर जो उसे सोता छोड़कर चले गए थे, फिर आए। कुमुद जाग चुकी थी। उन्होंने कुमुद की परिवर्तित दशा को देख कर कहा कि अब तो आशा के चिन्ह दिखाई देते हैं, शायद जल्दी ठीक हो जाएगी।

निःस्वार्थता की शोभा

स्वार्थता विश्वव्यापी पाप है। अतः चाहिए कि हम सावधान रहें। जब स्वयं हम में स्वार्थ है, तो भला हम किस मुंह से किसी अन्य व्यक्ति को स्वार्थी कह सकते हैं ? इस सर्वव्यापी स्वार्थ का कारण ? कदाचित् कोई कहे कि स्वार्थ तो जन्म से ही मनुष्य के स्वभाव में होता है; ठीक है, परन्तु जो दोष मनुष्य में जन्म से होते हैं, उन्हें दूर भी तो किया जा सकता है।

स्वार्थ की उस मात्रा के अतिरिक्त जो जन्म से ही हमारे स्वभाव में विद्यमान होती है, बहुत अधिक मात्रा उस स्वार्थ की होती है, जिसे हम स्वयं पैदा कर लेते हैं; वयस्क को स्वार्थ से मुक्त रहना ही चाहिए, यद्यपि अन्तर-द्वन्द का दमन कोई हंसी-खेल नहीं। यह सब कुछ जानते हुए, हमें चाहिए कि न केवल अपने ही मन में स्वार्थ न आने दें, वरन् अपनी सन्तान का भी शिक्षण बड़ी सावधानी से करें, जिस से ऐसा न हो कि वह हम ही से स्वार्थ सीख ले।

हम अपने बच्चों के स्वभाव में स्वार्थ कैसे उत्पन्न कर देते हैं, और उस की मात्रा को कैसे बढ़ा देते हैं ? कई प्रकार से। ऐसे बच्चे प्रायः देखने में आते हैं, जो यही हैं कि माता-पिता हमारी प्रत्येक आवश्यकता को सब से पहले पूरा कर दें। यह आदत उन्होंने कहां से सीखी ? कुछ माता-पिता बच्चों के जन्म से ही सब से पहले उन की इच्छाएं पूरी करते रहते हैं, तो फिर बच्चों को और क्या चाहिए ? अब यदि बड़े हो कर भी उन की यही आदत रही तो इस में उनका क्या दोष ?

प्रायः सुनने में आता है कि अमुक बालक को माता ने अपने लड़के को बिगाड़ दिया। उस ने यदि सब से बड़े केले की ओर हाथ बढ़ाया, तो मिल गया। यदि सब से अच्छा और अन्दर से लाल-लाल अमरूद मांगा तो दे दिया गया। सब से बड़ी जलेबी मांगी तो दे दी गई। इस प्रकार माता ने

उस की आदत बिगाड़ दी। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती, अपितु बालक जब बड़ा भी हो गया, तब भी किसी दूसरे के लिए हो न हो, परन्तु उसी लाड़ले के लिये एक न एक चीज रख छोड़ती, वह प्रत्येक चीज को यूं खा पी जाता मानों घर में और किसी को इन वस्तुओं के सेवन करने का अधिकार ही न हो। अब यदि आगे चल कर भी इस बालक की यही आदत रही तो दोष किस का ? माता का न ? यदि अब सुधार असंभव प्रतीत हो, तो केवल इसीलिये कि बचपन में सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया गया। माता-पिता को सुधार तो उसी समय आरम्भ करना चाहिए था, जब वह नन्हा बच्चा ही था। क्यों न किया ? इसलिए कि माता-पिता ऐसी बातों पर ध्यान ही नहीं देते, न उन के विषय में कुछ सोचते हैं, और न ही उन्हें न ही उन्हें देखते-परखते हैं, जो कुछ मन में आया कर गुजरे।

धैर्यपूर्वक समझाइए

आरम्भ में तो ऐसा प्रतीत होता है मानों बालक की रचना में दया नाम मात्र को भी नहीं होती। उस के हृदय में किसी के प्रति भी सहानुभूति नहीं होती—दया और सहानुभूति की भावनाएं उस के अपने अनुभव द्वारा जागृत होती हैं। अतः जब उन को स्वयं दुःख और पीड़ा का अनुभव हो, तब ही उस को यही बातें समझाई जायें कि दूसरे को भी इसी प्रकार पीड़ा हो सकती है। इस पर भी वह यह बात नहीं जान पाता कि मेरे कामों से दूसरे की पीड़ा कितनी बढ़-घट सकती है। उसे यह मालूम ही नहीं होता कि मेरे चिल्लाने से माता जी के सिर में दर्द बढ़ जाता है। ये सब बातें उसे सिखाने और अनुभव से ही आती हैं। क्रोध प्रकट करने में, लाल-पीली आंखें दिखाने और डांटने-फटकारने से काम नहीं चलता। उसे तो यही समझाया जाये कि जिस प्रकार तुम को कोई बात अच्छी-बुरी लग सकती है, दूसरों को भी ऐसी ही लगती है; दूसरों को भी दुःख हो सकता है; दूसरों को भी बुरा लगता है। जब तुम्हारा जी अच्छा नहीं होता या जब तुम दुःखी होते हो, तो सोचो कि दूसरे को भी ऐसा ही होता होगा। इस प्रकार तुम्हें दूसरे का ध्यान रहेगा। इस प्रकार की बातें समझाते समय माता-पिता बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग कर जाते हैं। यह बड़ी भूल है। बालकों को सीधी-सीधी भाषा में समझाना चाहिए। यदि बच्चा न समझे तो आप हिम्मत न हारिये। यह न कहिए कि छोड़ो भी, हम ने तो बहुत मक्ख मार ली, इस की समझ में कुछ आता ही नहीं। याद रखिए कि थोड़ा-थोड़ा कर के वह इन बातों को समझने लगता है, और जब थोड़ी-बहुत समझ आ जाती है, तो उस के हृदय में सहानुभूति भी पैदा हो जाती है।

प्रोफेसर ओशिया ने ठीक ही कहा है कि जब शिशु इस संसार में आता है तो प्रकृति उस से कहती है कि अपने मतलब की बातों को सोचो, जो कोई चीज देखो और लेने की इच्छा हो तो, तुरन्त उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो, दूसरे से अपनी टहल करवाओ, अपनी हर बात पूरी करवाओ; इस से तुम्हारा सुख बढ़ेगा तथा दुःख घटेगा। यह उस के हृदय की पुकार होती है, परन्तु सावधान और प्रत्येक बात की बारीकी को समझने वाले और सुशिक्षित माता-पिता सब कुछ बदल सकते हैं।

एक बार एक माता बहुत दुःखी हो कर रोने लगी। उस की तीन वर्ष की बच्ची उस के पास आई और गोद में चढ़ कर अपने फ्राक के सिरे से मां के बहते हुए आंसू पोंछने लगी। यही नन्ही बच्ची जब बड़ी हुई तो उस में नाम-मात्र को भी स्वार्थ नहीं था।

जितनी जल्दी बालक में समझ आने लगे, उतनी ही जल्दी उसे निःस्वार्थता का बहुमूल्य नियम सिखाइए, और साथ ही साथ इन नियमों को कार्य रूप में परिणत करने का महत्व भी समझाइए, परन्तु सिखाइए थोड़ा-थोड़ा कर के, कुछ आज तो कुछ कल।

यदि किसी परिवार में केवल एक ही बालक हो, तो माता-पिता को ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि मानो वे भी बच्चे हों, और बालक से कहें कि देखो भई सब अच्छी चीजें तुम ही समेट कर न बैठो, हमें भी दो, हमें भी खिलाओ अन्यथा बच्चा बड़ा हो कर स्वार्थी रहेगा।

एक दूसरी और आरम्भ में ही सिखाई जाने वाली बात यह है कि बालक के मन में दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति भावनायें जागृत की जायें कि अवसर आने पर वह अपनी उदारता का परिचय दे सके। परन्तु इस से भी पहले यह सिखाना आवश्यक है कि जो कुछ भी बालक के पास हो वह उन का मूल्य समझे। इस प्रकार वह बांट कर खाना और मिल कर खेलना सीख जाता है। उदाहरणतः मोहन के पास दो खिलौने हैं, परन्तु दलीप के पास एक भी खिलौना नहीं है, तो मोहन में ऐसी भावना उत्पन्न करनी चाहिए कि वह अपने खिलौने से स्वयं खेले तो दलीप को भी खिलाए। यदि बालक में स्वाभाविक रूप से उदारता की प्रवृत्ति हो तो उसे दबाइए नहीं, वरन् उन्हें प्रोत्साहन दीजिए, जिस से उसे निःस्वार्थता की प्रेरणा मिले। इस अवस्था में उसे इस बात का कोई अनुभव नहीं होता, अतः उसका पथ-प्रदर्शन कीजिए। इस के साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपने माता-पिता द्वारा खरीदी हुई वस्तुओं में से कोई भी वस्तु बिना उन की अनुमति के किसी को न दे। उदारता इस बात में नहीं कि अपनी अनावश्यक वस्तुओं को दूसरों को दे दिया जाये।

दूर करने के हेतु यह तो उचित है कि दूसरों को ऐसी वस्तुएं दी जाएं जो उन के काम आयें, परन्तु जिन से आधा काम निकल चुका हो, उन्हें दूसरों को देना उदार स्वभाव का सूचक नहीं, वरन् समझदारी, कमखर्ची और सावधानी जैसे सद्गुणों का द्योतक है। इस में दूसरों की सहायता करने की इच्छा पाई जाती है, त्याग नहीं। हां, यदि माता-पिता अपने बालक की किसी अनावश्यक वस्तु की मरम्मत करा दें या उसे साफ करके दूसरे बालक को देने योग्य बना दें, तो इस में माता पिता का त्याग कह सकते हैं। परन्तु बालक का पथप्रदर्शन करते हुए उस की दूसरों की सहायता करने की इच्छा को न मारिये।

इस के अतिरिक्त बालक को यह ज्ञान और सिखानी चाहिये कि बच्चे कई प्रकार से स्वार्थी बन जाते हैं। जो बालक हर बात में अपनी हठ पूरी कराना चाहता है, वह उन बालक की अपेक्षा स्वार्थी होता है, जो न दूसरों के साथ मिल कर खेलता है, न अपनी कोई वस्तु किसी को देता है और न कोई वस्तु बांटकर खाता है। यह तुच्छ प्रकार का स्वार्थ होता है और साथ-साथ इस का अपने अन्दर पहचानना और भी कठिन होता है। एक महिला ने, जिसे दूसरों की आवश्यकताओं का बड़ा ध्यान रहता था, किसी से कहा कि मुझ में होने को तो अनेक दोष हैं, परन्तु यदि नहीं है तो स्वार्थ नहीं है। परन्तु इसी

Vidyavrata

महिला का यह ख्याल भी था कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, मेरी बात न टले। दूसरे कुछ ही क्यों न चाहें, परन्तु उस की इच्छा अटल रहती थी।

श्याम: "आओ गुल्ली-डण्डा खेलें।"

राम: "न, हम तो गेंद खेलेंगे।"

श्याम: "नहीं, गेंद नहीं, गुल्ली-डण्डा ही खेलेंगे।"

गुल्ली-डण्डा तो खेला गया और श्याम की हठ पूरी हो गई परन्तु श्याम को दूसरों की भावनाओं, और इच्छाओं का भी ध्यान होना चाहिए था। दूसरों को अपने विचार का बनाने में तो कोई हानि नहीं, परन्तु इस में स्वार्थ न हो।

स्वार्थता तथा निःस्वार्थन के परिणामों पर आधारित कहानियों का बालक के स्वभाव पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। गूढ़ उपदेश की अपेक्षा क्रियात्मक निदर्शन द्वारा बात अधिक सरलता से समझ में आ जाती है।

किट्टू का मन परिवर्तन

एक दिन सवेरे किट्टू, मालती, राजू और कमला अपने मुहल्ले से कुछ ही दूर पर एक बगीचे में पिकनिक करने गए। बगीचे के एक कोने में बड़ा सा जामुन का एक पेड़ था। पकी-पकी जामुनें नीचे हरी-हरी घास पर पड़ी थीं। बच्चे उन्हें चुनने लगे। जब चुनते-चुनते उनकी झोलियां भर गईं, तो वे वहीं पेड़ की छाया में बैठ गए और बातें करने लगे। बातचीत का विषय था "जामुनें।"

"मैं तो अपनी जामुनों में से थोड़ी सी दादी को दूंगी," मालती ने कहा।

"मैं थोड़ी-सी जामुनें विनय को दूंगा," राजू बोला, "वह बेचारा घर पर ही रह गया, पैर की चोट के कारण न आ सका।"

"भई, हम तो अपनी जामुनों में से कुछ अच्छी-अच्छी चुन सवेरे पाठशाला ले जा कर लीला मोहन जी को देंगे, उन्हें जामुनें बड़ी अच्छी लगती हैं," कमला ने कहा।

पर किट्टू अपनी जामुनों पर आंखें गाड़े चुपचाप बैठा रहा; उसके मन में भी कुछ-न-कुछ अवश्य ही होगा, पर वह बोला नहीं।

मालती ने उसकी ओर देखा, कमला ने उसकी ओर देखा और राजू ने भी उस की ओर देखा—और तीनों बच्चे एक स्वर होकर बोले—"तुम अपनी जामुनों में से किसे दोगे, किट्टू ?"

"भई, हम तो किसी को नहीं देंगे," किट्टू ने उत्तर दिया।

"तुम बड़े स्वार्थी मालूम होते हो," मालती ने कहा।

"हां-हां, कमला बोली, अपनी चीजों में से किसी और को न देना स्वार्थ ही तो हुआ।"

"भई," राजू बोला, "मुझे तो ऐसा सोचते हुए भी कि सारी-सारी जामुनें स्वयं ही खा लूं शर्म आती है।"

"हमें शर्म-वर्म नहीं आती," किट्टू ने कहा, "जामुन हमने चुनी हैं और हम ही खायेंगे," यह कहते हुए उसने अपना मुंह फेर लिया।

थोड़ी देर तक किसी ने कुछ न कहा। यह बात तीनों बच्चों को बुरी लगी कि किट्टू में इतना स्वार्थ है। वह अपनी चीजें बांटकर नहीं खा सकता।

कुछ देर बाद मालती ने कहा, "आओ भई, अब भोजन कर लें। भोजन का समय हो गया।" सब बच्चे बगीचे के एक कोने में रखा हुआ अपना-अपना खाना लेने दौड़े। तीनों बच्चे अपना-अपना थैला उठा लाए, परन्तु किट्टू के पास कुछ भी न था, वह घर से लाया ही न था।

Suraj N. Sharma

मालती पूरियां, भुजिया और हलवा लाई थी।
कमला पराठे, आलू की तरकारी और लड्डू लाई थी।
राजू कचौरियां, दो प्रकार की तरकारियां और पेड़े लाया था।
हरी-हरी घास पर कागज के टुकड़े बिछाकर बच्चों ने भोजन सामने रख लिया।

किट्टू को बुरा लगा। वह पास ही आम के पेड़ के पीछे जा छिपा। उसे भूख लग रही थी। सोचने लगा यदि मैं भोजन न भूल आया होता, तो मजे से खाता। उसे भूख और सताने लगी। सोचने लगा ये ये लोग स्वयं खा रहे हैं, मुझे क्यों नहीं देते ?

सहसा उसे ध्यान आया, ये सब स्वार्थी हैं। पर विचार ने पलटा खाया—उसने सोचा कि जैसे ये स्वार्थी हैं मैं भी तो हूं, मैं भी तो अपनी जामुनें किसी को नहीं देना चाहता। परन्तु नहीं। "सुनो भई," किट्टू चिल्लाया, "मैं अपनी जामुनों में से थोड़ी जामुनें पप्पू की मां को दूंगा। वह बेचारी अचार डाल लेगी।"

"शाबाश," राजू ने ऊंची आवाज से कहा, "किट्टू स्वार्थी नहीं, वाह-वाह !"

"आओ किट्टू, लो ये पूरियां खाओ," मालती ने उसे निमन्त्रित किया।

क्या खाऊं ?

"और यह रहे तुम्हारे हिस्से के लड्डू," कमला ने कहा।

किट्टू अब पेड़ के पीछे से दौड़कर उनके सम्मुख आ बैठा।

मालती बोली, "यदि तुम्हारा मन परिवर्तन न भी होता, तो भी हम लोगों ने तुम्हारे लिए थोड़ा-थोड़ा भोजन अलग रख लिया था, थोड़ी ही देर बाद बुला ही लेते।"

किट्टू ने पेट भर खाया और निश्चय किया कि मैं अब कभी स्वार्थ की बात तक नहीं सोचूंगा। सचमुच ही फिर कभी किसी बात में स्वार्थ प्रदर्शित नहीं किया।

Photo credit D. S. Kasbekar

देने की कला ही जीने की कला है। धन्य हैं वे जो इसका पाठ जीवन के प्रारम्भ में सीखते हैं।

आलसी

आलसी बालक के विषय में जितना कुछ तीस चालीस वर्ष पहले सुनने में आता था, आज कल नहीं आता। तो क्या अब बालक आलसी होता ही नहीं? क्या ही अच्छी बात होती यदि ऐसा होता। कदाचित् पहले की अपेक्षा आज आलसी बालक के विषय में बहुत कम ही सुनने में आने का कारण है—माता-पिता, न कि स्वयं बालक। आजकल के माता-पिता शिक्षित होते हैं, उन में बच्चों के स्वभाव व प्रकृति को समझने की योग्यता आ गई है। वे बालक के स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों पर पहले की अपेक्षा अब अधिक ध्यान देने लगे हैं। वे बालक की रुचि का अध्ययन करते हैं, और कदाचित् वे पहले की अपेक्षा अब प्रायः बालकों के छोटे-छोटे दोषों की उपेक्षा करने लगे हैं।

पहले तो बहुत से ऐसे बच्चों को भी आलसी कह दिया था जो वास्तव में आलसी नहीं होते थे। उदाहरण के लिए किसी बढ़ई को ले लीजिए जिस की यही इच्छा थी कि मेरा बेटा मुझ से अधिक अच्छा बढ़ई बने। परन्तु बेटे की रुचि किसी और ही ओर थी। उसे औजार लेकर लकड़ी के टुकड़ों में सिर मारना अच्छा नहीं लगता था। उस के पिता ने लकड़ी का एक टुकड़ा उसे रंदने को दिया और काम करने चला गया। उसने सोचा कि इस प्रकार काम में लगने से बालक की रुचि बढ़ई-गीरी की ओर आप से आप हो जायेगी, परन्तु वह यह भूल गया कि बालक तो स्वाभाविक रूप से ही उस रुचि से रहित था। माता-पिता यह बात भूल जाते हैं कि जब वे स्वयं बालक बालिकाएं होंगे, तो उन की भी कोई-न-कोई विशेष रुचि रही होगी और बढ़ते-बढ़ते बढ़ी होगी। अब बढ़ई के लड़के में तो यह बात थी नहीं इसलिए उस का रुचि-निर्माण न हो पाया। फलतः या तो काम न कर पाया और यदि किया भी तो अपूर्ण। अब बढ़ई अपने मन में या बालक से या सम्भवतः किसी और से कहता, "राम् तो इतना आलसी है कि इस से कुछ नहीं हो सकेगा।" परन्तु इस से तो कोई बात नहीं बनी। हो सकता था कि किसी अन्य प्रकार के कार्य में राम् का मन लग जाता, तो वह प्रसन्न हो कर करता।

P.I.B.

मिलजुल कर काम करना

इस बात का भी एक पहलू है। लगभग सभी बालक अकेले काम करना न पसन्द करते हैं। वे भी तो सामाजिक प्राणी हैं। यदि माता-पिता उन के साथ मिल कर काम करें तो वे सहर्ष और भली भांति करेंगे। माता-पिता और बालकों के मिल-जुल कर काम करने में बहुत लाभ हैं। इन में सब से बढ़ कर यह है कि इस प्रकार काम करने से माता-पिता और संतान के मन व हृदय एक हो जाते हैं।

क्या बच्चा, बड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रायः उसी काम को करना चाहता है, जिसे वह अच्छी तरह कर सकता हो। और उस काम को न-पसंद करता है जिस में उसे असफलता की आशंका हो। जब हम कोई काम सफलतापूर्वक कर लेते हैं, तो हमें एक प्रकार के गर्व का अनुभव होता है।

माता-पिता बच्चों से उन बातों की आशा रखते हैं जो उन्हें (बच्चों को) कभी सिखाई भी न गई हों। इस प्रकार जब कोई बालक काम करता है तो उसे यह बताने वाला कोई नहीं होता कि ऐसे करो या ऐसे न करो, और न ही उस काम के सम्बन्ध में कोई कुछ उससे पूछता है।

आखिर माता-पिता अपने दिलों को टटोलना बिलकुल ही क्यों भूल जाते हैं कि जब हम छोटे थे तो हमारी अनुभूतियां तथा हमारी योग्यताएं क्या थीं ? या फिर अपने बचपन के कारनामों का बखान बढ़ा-चढ़ा कर क्यों करते हैं और अपने बालक के काम को अपने बचपन के काम के मुकाबले में तुच्छ क्यों समझते हैं ? क्या वे भूल गये कि उन के माता-पिता हाथ में लम्बी सी छड़ी ले कर ऐसे-ऐसे काम करवाते थे, जिन में उन की तनिक भी रुचि न थी ? या उन्हें केवल अपने बाल्यकाल में सफलता-पूर्वक किये हुए कार्यों को गर्व-पूर्ण दृष्टि से निहारते समय मारे खुशी के जामे में न समाना याद है ? क्या उन का विचार है कि हम तो स्वभाव से ही ऐसे थे ? यदि थे भी तो उन के माता-पिता ने उन का उचित शिक्षण किया था, प्रोत्साहन दिया था, इसीलिए तो आरम्भ से ही सफल रहे ।

जैसे माता पिता वैसी सन्तानें

विद्वानों का विचार है कि आलस्य जैसा अवगुण माता-पिता द्वारा बच्चों में नहीं पहुंचता । जो कुछ भी हो, परन्तु निरीक्षण द्वारा यही ज्ञात हुआ है कि यदि कोई व्यक्ति अभिलाषा रहित है तो उस की सन्तान भी ऐसी ही होती है । इस में तो कोई संदेह ही नहीं कि इस समस्या का सम्बन्ध वातावरण व शिक्षण दोनों ही से होता है ।

तो कुछ करना चाहिए । स्वाभाविक रूप से आलसी बालक में उच्च आकांक्षा होती ही नहीं । भारतवर्ष में घर पर लड़कों के लिए कोई काम निकालना प्रायः कठिन सा प्रतीत होता है । परन्तु बहुत से ऐसे काम हैं जिन्हें बालक-बालिकाएं दोनों ही कर सकते हैं ।

एक बार मेरी एक महिला से भेंट हुई । वह कहने लगीं—"हो सकता कि लोग कहें कि यह तो अपने लड़कों से भी इतना काम लेती है । हमारे यहां नौकर हैं, पर लड़के भी तो घर की सफाई वगैरा कर सकते हैं, क्योंकि मेरा तो यह सिद्धांत है कि रोटी खाओ, तो काम करो । अब ये प्रायः घर में कुछ-न-कुछ काम करते ही रहते हैं—मेरे घर में तो इतना काम है कि मुझ से और नौकरों से संभाले नहीं संभलता—दुख यही है कि कोई लड़की न थी । किन्तु यदि होती—तो क्या इस का भी कोई कारण है कि लड़के घर पर अन्दर-बाहर के अनेक काम करना न सीखें ? घर पर आजकल की सीखी हुई यही छोटी-छोटी बातें, कल जीवन में बड़ी सहायक होंगी ।

यहां भी स्वार्थ व निःस्वार्थ की बात आ जाती है । घर में माता का स्वस्थ रहना आवश्यक है । संतान को उन के स्वास्थ्य का ख्याल करना चाहिए, चाहे तो लड़के हों, चाहे लड़कियां । ऐसी परिस्थिति में पिता जी ही आड़े आ सकते हैं । समझदार पिता के पुत्र भी समझदार ही निकलते हैं । पिता के मुंह से निकले हुए शब्दों का और उन के आदर्श जीवन का संतान के आचरण व स्वभाव पर बहुत प्रभाव पड़ता है । संतान का अच्छा बुरा निकलना इन्हीं बातों पर बहुत कुछ निर्भर है ।

स्वास्थ्यवर्धक स्वभाव का महत्व

बच्चों का स्वास्थ्य-वर्धक स्वभाव आगे चल कर उन की कार्य-क्षमता को बल देता है । यदि नहाने, पानी पीने और मलोत्सर्ग की उपेक्षा की गई, तो शरीर के अन्दर विष बनने लगते हैं तथा विषों

से शारीरिक बल घटता है। यदि आवश्यकता से अधिक भोजन किया जाये तो उस का भी यही दुष्प्रभाव होता है, क्योंकि शरीर को अधिक काम करना पड़ता है। यदि बालक बहुत ही कम खाये, तो उस के शरीर में पर्याप्त बल नहीं आता। फलत: उस का मन काम करने को नहीं करता।

Faults Of Childhood And Youth (बाल्यावस्था व युवावस्था में पाये जाने वाले दोष) नामक पुस्तक के १३० वें पृष्ठ पर अमरीका के एक प्राध्यापक एम. वी. ओशिया लिखते हैं:

एक लड़का जो शारीरिक व मानसिक रूप से तो भला-चंगा था, परन्तु हाई स्कूल में अपने काम में पिछड़ा हुआ रहता था। इस बात की सूचना उस के माता-पिता को दी गई। वह तेज या काम तेज न करता था, ठीक तरह से पढ़ता-लिखता न था और कक्षा में ध्यान न देता था। उस का एक सहपाठी जो न तो उस जैसा हृष्ट-पुष्ट था और न ही उतना तीक्ष्ण बुद्धिवाला था, दिन प्रतिदिन अपनी पढ़ाई में उन्नति करता जाता था। जब उस से पूछा गया कि आखिर 'क' के घटिया प्रकार के काम का क्या कारण है, तो उस ने उत्तर दिया:

" ' 'क' में दो बुरी आदतें हैं। एक तो वह घर पर किसी भी काम को समय पर अथवा ओजपूर्वक हैं और न सोने का। रात को देर-देर तक यहीं बैठा व्यर्थ की चीजें पढ़ता रहता है। उसे किसी भी काम को उत्तम रीति से करने की आकांक्षा नहीं है।'

"इस से 'क' के प्रत्येक कार्य में लापरवाही का रहस्य खुल जाता है। उस ने किसी भी कार्य को उच्च स्तर पर करना नहीं सीखा है, न ही वह नियत कार्य-क्रम द्वारा शारीरिक बल से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है खाने, सोने, टहलने-फिरने, बात यह कि प्रत्येक कार्य में अनियमितता के कारण खाने की आदत पड़ गई है। वह क्रमानुसार व्यायाम भी नहीं करता। मन में आ गया तो खेल-कूद लिया, और फिर इतना खेलता है, इतना खेलता है कि सारा शरीर अकड़ जाता है और कई-कई दिन हालत बुरी रहती है। उसे अपने स्वास्थ्य की जरा परवाह नहीं, न नियमित रूप से दांत साफ करता है, और न ही प्रतिदिन स्नान करता है।

"उसे इस बात की परवाह ही नहीं कि लोग मेरे विषय में क्या सोचते होंगे और क्या नहीं। उस की कला से कक्षा में अध्यापकों या प्रशंसा-पत्र बन सके या न बन सके। 'क' जैसे एक नहीं, अनेक बालक देखने में आये हैं, जिन्हें अपनी बदनामी का ख्याल तो मानो होता ही नहीं। अत: ऐसे बालकों से उच्च स्तर पर काम कराना कठिन होता है।"

आदतों से ही आदमी बनता है

स्पष्ट है कि 'क' के प्रारम्भिक प्रशिक्षण में बहुत अधिक कमी रह गई थी। बाल्यावस्था में बालक के स्वभाव-निर्माण की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया है बालक को मनमानी और उठा-पटांग बातें करने से रोका नहीं जाता। बहुधा माता-पिता सोच लेते हैं—करने भी दो उन्हें अपनी मर्जी, जब

चाहे खायें, जो चाहे पीयें और जब चाहे सोयें,—और कुछ नहीं तो प्रसन्न तो हैं। परन्तु ये बुद्धिहीन माता-पिता यह नहीं समझ पाते कि इस प्रकार गलत बातों की नींव पड़ती जाती है, जिन से आगे चल कर बालक को मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक आपत्तियों का आखेट रहना पड़ता है। भली आदतें डालने से प्रायः आलस्य आप से आप जाता रहता है।

एक और बात है जिस की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। बहुत से बालकों का शारीरिक बल गन्दी आदतों के कारण ही घटता जाता है और बजाये इस के कि इस बल का सदुपयोग हो, वह व्यर्थ जाता है।

प्रायः ऐसा हुआ है कि माता-पिता और शिक्षक बालक को आलसी समझ बैठे। परन्तु इस का वास्तविक कारण था Adenoids नामक गले की बीमारी। इस बीमारी के कारण उस की श्वास-क्रिया में ऐसी बाधा पड़ी कि शरीर के अन्दर रक्त शुद्ध करने वाली प्राण-वायु (Oxygen) प्रर्याप्त मात्रा में पहुंच न सकी, और विष जो अन्दर बनते रहे, उन्होंने मानसिक शक्तियों को अक्रिया बना दिया।

शारीरिक दोषों को दूर कीजिए

एक अच्छे शिक्षित परिवार का एक लाड़ला बालक पाठशाला में पहली कक्षा का काम नहीं कर सकता था। वह आलसी सा लगता था। परन्तु जब उस के गले की गिल्टियां निकाल दी गईं तो वह दूसरे बच्चों जैसा ही हो गया। आज वही बालक बड़ा हो कर डाक्टर बन गया है; और अन्य बालकों को उसी रोग से मुक्त कर रहा है, जिस से वह बाल्यावस्था में स्वयं पीड़ित था।

कभी-कभी बालक में आलस्य का कारण होता है, दांतों में दोष। हो सकता है कि कोई-न-कोई बिगाड़ दांतों में हो। दांतों की जड़ों में का विषैला रक्त शरीर भर के रक्त में मिलता रहता है और पीड़ा आदि कुछ नहीं होती। माता-पिता को चाहिए कि बच्चों को मुंह की सफाई, दांतों का भली भांति मांजना और खूब अच्छी तरह कुल्ली करना, सिखाने में कोई कसर न उठा रक्खें।

इस के अतिरिक्त Thyroid भी कुछ कम आपत्ति उत्पन्न नहीं करती। यदि यह गिल्टी अधिक सक्रिया हुई, तो बालक का मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर पाता और वह जरा-जरा सी बात में घबरा जाता है; और यदि यह गिल्टी (गांठ) प्रर्याप्त रूप से सक्रिया न हुई, तो बालक आलसी और "ओजहीन" प्रतीत होता है। इस दशा में चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

नई रुचियां उत्पन्न कीजिए

यदि बालक अन्य बालकों की भांति खेल-कूद में तेज हो, परन्तु काम के समय आलस्य दिखाये, तो इस का यह निष्कर्ष निकलता है कि उस में शारीरिक दोष कोई नहीं, अपितु उस में नई रुचियां उत्पन्न करने के लिए कुछ-न-कुछ करने की आवश्यकता है। प्रेम और सावधानी से उस का सहयोग प्राप्त कीजिए। कभी-कभी यह काम माता-पिता की अपेक्षा अन्य व्यक्ति बड़ी सरलता से कर

Benedict Raphael

लेता है। कारण यह है कि माता-पिता ने तो बालक को बुरा-भला कहा, उसे झिड़का, उसे फुसलाने का प्रयत्न किया, और दण्ड भी दे दिया, परन्तु बालक पर इन सब बातों का प्रभाव कुछ न हुआ—उस की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। बात यह है कि ऐसी दशा में बच्चे को अपने माता-पिता के प्रयत्नों के विरुद्ध काम करने की एक प्रकार की आदत पड़ जाती है, और उस में इच्छित परिवर्तन नहीं हो पाता। चार्ल्स डार्विन का सिद्धांत कितना ही अविश्वसनीय क्यों न समझा जाये, परन्तु उस का जीवन एक आदर्श प्रस्तुत करता है— बालक डार्विन जो "आलसी" रहता था—बदल कर कुछ का-कुछ बन गया।

चाहे खायें, जो चाहे पीयें और जब चाहे सोयें,—और कुछ नहीं तो प्रसन्न तो हैं। परन्तु ये बुद्धिहीन माता-पिता यह नहीं समझ पाते कि इस प्रकार गलत बातों की नींव पड़ती जाती है, जिन से आगे चल कर बालक को मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक आपत्तियों का आखेट रहना पड़ता है। भली आदतें डालने से प्राय: आलस्य आप से आप जाता रहता है।

एक और बात है जिस की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। बहुत से बालकों का शारीरिक बल गन्दी आदतों के कारण ही घटता जाता है और बजाये इस के कि इस बल का सदुपयोग हो, वह व्यर्थ जाता है।

प्राय: ऐसा हुआ है कि माता-पिता और शिक्षक बालक को आलसी समझ बैठे। परन्तु इस का वास्तविक कारण था Adenoids नामक गले की बीमारी। इस बीमारी के कारण उस की श्वास-क्रिया में ऐसी बाधा पड़ी कि शरीर के अन्दर रक्त शुद्ध करने वाली प्राण-वायु (Oxygen) पर्याप्त मात्रा में पहुंच न सकी, और विष जो अन्दर बनते रहे, उन्होंने मानसिक शक्तियों को अक्रिया बना दिया।

शारीरिक दोषों को दूर कीजिए

एक अच्छे शिक्षित परिवार का एक लाड़ला बालक पाठशाला में पहली कक्षा का काम नहीं कर सकता था। वह आलसी सा लगता था। परन्तु जब उस के गले की गिलटियां निकाल दी गईं तो वह दूसरे बच्चों जैसा ही हो गया। आज वही बालक बड़ा हो कर डाक्टर बन गया है; और अन्य बालकों को उसी रोग से मुक्त कर रहा है, जिस से वह बाल्यावस्था में स्वयं पीड़ित था।

कभी-कभी बालक में आलस्य का कारण होता है, दांतों में दोष। हो सकता है कि कोई-न-कोई बिगाड़ दांतों में हो। दांतों की जड़ों में का विषैला रक्त शरीर भर के रक्त में मिलता रहता है और पीड़ा आदि कुछ नहीं होती। माता-पिता को चाहिए कि बच्चों को मुंह की सफाई, दांतों का भली भांति मांजना और खूब अच्छी तरह कुल्ली करना, सिखाने में कोई कसर न उठा रक्खें।

इस के अतिरिक्त Thyroid भी कुछ कम आपत्ति उत्पन्न नहीं करती। यदि यह गिलटी अधिक सक्रिया हुई, तो बालक का मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर पाता और वह जरा-जरा सी बात में घबरा जाता है; और यदि यह गिलटी (गांठ) पर्याप्त रूप से सक्रिया न हुई, तो बालक आलसी और "ओजहीन" प्रतीत होता है। इस दशा में चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

नई रुचियां उत्पन्न कीजिए

यदि बालक अन्य बालकों की भांति खेल-कूद में तेज हो, परन्तु काम के समय आलस्य दिखाये, तो इस का यह निष्कर्ष निकलता है कि उस में शारीरिक दोष कोई नहीं, अपितु उस में नई रुचियां उत्पन्न करने के लिए कुछ-न-कुछ करने की आवश्यकता है। प्रेम और सावधानी से उस का सहयोग प्राप्त कीजिए। कभी-कभी यह काम माता-पिता की अपेक्षा अन्य व्यक्ति बड़ी सरलता से कर

बालक डर्विन पाठशाला तो जाता था, परन्तु कुछ अधिक पढ़ता लिखता न था। बैठ कर पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करने की अपेक्षा उसे जंगल में फिरना अधिक प्रिय था। वह सफल विद्यार्थी न बन सका। इस बात का उस के पिता को बड़ा दुःख हुआ। वह अपने बेटे डार्विन को डाक्टर बनाना चाहते थे, परन्तु डार्विन ने कहा कि न तो मुझे पाठशाला ही भाती है और न ही काम पसन्द है। इस के पश्चात् उसे एक दूसरी पाठशाला में इस आशा से भर्ती करा दिया कि और कुछ नहीं तो पादरी ही बन जायें। यहां उस के अध्यापकों में से एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था उस ने डार्विन की स्वाभाविक रुचि का पता लगा लिया। बालक डार्विन ने घर लिख भेजा कि मैं पादरी नहीं बन सकता, पर प्रकृति विशेषज्ञ बन सकता हूं और इस में पूर्ण सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। वास्तव में ही वह अपने अभिलाषित विषय का पूर्ण पण्डित हो गया। परन्तु उस में एक विशेष बात यह थी कि जिस कार्य में उस की रुचि न होती वह उससे नहीं हो सकता था।

दिवास्वप्न का आखेट

माता-पिता के लिये यह बात बहुत आवश्यक है कि वे बालक में दृढ़-निश्चय की आदत डालें और उसे ऐसी शिक्षा दें कि वह अपने ऊपर नियंत्रण रख सके और अपने आप को किसी कार्य के करने में प्रवृत्त कर सके। आरम्भ से बालक के मन में यह बात डाल देनी चाहिए कि जो कुछ करना उचित हो उसे करे। सभी बच्चे चाहते हैं कि हम बड़े हो कर बड़े आदमी बनें। बच्चे यह भी चाहते हैं कि हम जो कुछ करें, अपनी इच्छा से करें, कोई अन्य व्यक्ति हम से जबरदस्ती कुछ न करायें। जब वे अपनी इच्छा से किसी कार्य में व्यस्त हों, तो माता-पिता अथवा शिक्षक का सहयोग लाभदायक सिद्ध होता है।

सम्भव है कि आप का आलसी बच्चा दिवास्वप्न का आखेट हो। उस की इच्छा तो यही कि माता-पिता, शिक्षकगण और मित्रगण, सभी मेरी प्रशंसा करें, मुझे अच्छा कहें; परन्तु कोई भी ऐसे काम नहीं कर पाता जो प्रशंसनीय हो। अपनी यह इच्छा पूरी करने के हेतु वह अपनी कल्पना-शक्ति के आधार पर कोई-न-कोई ऐसी बात सोच निकालता है जिस से उस की आशापूर्ण हो जाती है। उदाहरणार्थ—वह गाना चाहता है, परन्तु गानविद्या सीखने में अपने को असमर्थ पाता है। सम्भवतः उस में योग्यता न हो। परन्तु उस का मन इसी विषय में पूर्णतया लीन है—उसे ऐसा लगने लगता है कि मैं बहुत बड़ा गवैया हूं, सामने सुनने वालों का जमघट है, मेरे मित्र भी बैठे हैं, मैं गा रहा हूं सभी लोग मंत्र-मुग्ध प्रतीत होते हैं—गाना समाप्त हुआ है—तालियों की ध्वनि से कमरा गूंज उठा। मैं सफल रहा ... इस दशा में उस के लिये वास्तविक संसार में लौटना और यह अनुभव करना कि मैं प्रेम हूं, संगीतज्ञ नहीं, बहुत कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के बालक को सच्चे और धैर्यपूर्ण पथप्रदर्शक की आवश्यकता होती है, जो उसे किसी एक कार्य को भली-भांति करने में सहायता दे सके—जिससे बालक वह कार्य इस प्रकार करे कि सभी लोग वाह-वाह कर उठें। उस के मित्रों द्वारा भी उस के किये हुए कार्य की प्रशंसा करवाइये। कभी

बच्चे और क्या बड़े सभी उन कार्यों को करना चाहते हैं, जिन्हें वे भली-भांति और सफलतापूर्वक कर सकते हों। उपयुक्त सराहना बालक में साहस भर देती है। उसे इस से सच्ची प्रसन्नता होगी—काल्पनिक प्रसन्नता व गर्व नहीं।

कुछ-न-कुछ करना

हो सकता है कि आप और आप के बेटे पर वही बात लागू हो जो चार्ल्स डार्विन के विषय में कही गई थी—"अध्यापकों ने जिस लड़के को आलसी पाया था, उसी ने प्राध्यापक हेंस्लो (Henslow) के प्रेरणाजनक पथ-प्रदर्शन में अपने को परिश्रम और मानसिक ओज की दृष्टि से एक अद्भुत व्यक्ति सिद्ध कर दिखाया।"

एक बुद्धिमान शिक्षक का कथन है—"माता-पिता को चाहिए कि अपनी संतान को समय का मूल्य व सदुपयोग सिखाएं—कुछ ऐसी बातें सिखायें जिन से मानवता का कल्याण हो और ईश्वर की बड़ाई।"

"जो माता-पिता अपनी संतान से कुछ न करा कर उन्हें समय गंवाने का प्रोत्साहन देते हैं, वे बड़ी ही अनुचित बात करते हैं। बच्चे शीघ्र ही आलस्य-प्रेमी बन जाते हैं और फलत: बड़े हो कर साधन-हीन और अनुपयोगी सिद्ध होते हैं। जब वे खाने-कमाने की अवस्था को पहुंच जाते हैं और काम मिल जाता है तब भी वैसे ही आलस्य से काम करते हैं, परन्तु वे वेतन पूरा चाहते हैं—मानो तत्परता और स्फूर्ति के नमूने हों।"

पुन: निर्माण की अपेक्षा निर्माण सरल होता है। यदि माता-पिता आरम्भ से ही संतान के चरित्र-निर्माण में संलग्न रहें, बजाये इस के कि बाद में बिगड़े हुए बच्चों के सुधार का प्रयत्न करें और उन के उलझे हुए जीवन की गुत्थियों को सुलझाएं, तो कितने समय की बचत हो, कितना कम परिश्रम करना पड़े। हम एक बार फिर इस बात पर बल देते हैं कि बचपन में ही बालक में ऐसी अच्छी-अच्छी आदतें डालनी चाहिए, जो उस के शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक हैं—और जिन के द्वारा बालक बड़ा हो कर आत्म-नियंत्रित जीवन व्यतीत कर सके।

Fox Photo Ltd

मैं इसे करके छोड़ूंगा

विनोद की अवस्था तो इतनी न थी, परन्तु वह था अच लम्बा-चौड़ा तगड़ा लड़का। वह अन्य लड़कों क तरह सभी कुछ कर सकता था। नाव-विहार में उसे आनन्द आता, हॉकी-फुटबॉल में उसे मजा आता, सारां यह कि बाहर खेला जाने वाला कोई खेल और दौड़-धूप का कोई भी काम ऐसा न था जो उससे छ हो। लड़का बड़ा शिष्ट और विनीत था। उसके माता-पिता उसपर जान देते थे, उन्हें उस पर बड़ा गर्व था इस के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी वह प्रिय था, और शिक्षकों का भी उस पर कुछ कम स्नेह न था

परन्तु इस संसार में इने-गिने ही व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन में गुण-ही-गुण हों, दोष कोई न हो। अतः विनोद में भी एक कमी थी, उसके स्वभाव में उग्रता थी। वैसे तो स्वभाव में ज्वाला का होन कोई बुरी बात नहीं, यद्यपि इस पर पूर्णतया नियंत्रण रखना आवश्यक है। परन्तु विनोद को अपने मन को पूर्ण रूप से वश में रखना अभी न आया था।

विनोद को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक था, परन्तु पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन में उसका जी न लगता था। इधर मन मारता और पुस्तकें, लेकर बैठता, और उधर उसका मन उचट जाता—उसका मन लगता था, साहस की कहानियों में, जोखिम की कहानियों में और जोशीली कहानियों में। फलतः उसके मन में विचित्र विचार चक्कर लगाने लगते। उसके मन में विचित्र बातें उभरतीं, भयंकर स्थितियां उसकी आंखों के सामने आ जातीं, मार-काट रक्त-पात के कल्पित दृश्य उस के अंग-अंग में जोश भ आवेश भर देते, वह सोचने लगता कि काश मैं—युद्ध लड़ता, काश मैं भी एक साहसी सैनिक बन सकता।

वह भी दूसरे लड़कों की भांति पाठशाला जाता था। परन्तु पढ़ने-लिखने में बहुत आलसी था। ओजपूर्ण कहानियों के सामने पाठ्य-पुस्तकों की बातें उसे फीकी-फीकी प्रतीत होती थीं। जब वह अध्ययन में मन लगाने का प्रयत्न करता, तो कल्पना उसे कहीं और ले भागती—किसी रण-भूमि में या कहीं ऐसे ही रोमांचकारी घटना-स्थल पर। फल यह होता कि कक्षा में आता तो प्रत्येक विषय में उसका काम अधूरा होता।

उस के सभी शिक्षकों का उस पर स्नेह था, परन्तु उन्हें उस के आलस्य पर दुःख होता था। उस के सहपाठी जो उससे छोटे थे, कमजोर थे और जो उतने तीक्ष्ण बुद्धि वाले भी न थे, उससे पढ़ाई में आगे रहते।

Vidyavrata

"अच्छा आदमी तो अच्छा ही होता है," विनोद बोला, "मेरा मतलब है वह कभी कोई बुरा काम नहीं करता, और जरा 'कुछ होता है।' "

"हां-हां ठीक कह रहे हो," श्री गोखले ने उसकी हिम्मत बढ़ाते हुए कहा, "तुम्हारा यही तो अभिप्राय है कि अच्छा मनुष्य वही होता है जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, चाहे उसे वह अच्छा लगे या न लगे, वह अपनी ओर से पूरी-पूरी कोशिश कर गुजरता है ?"

"जी हां," विनोद ने स्वीकार किया।

"अच्छा विनोद, अब यह बताओ," श्री गोखले बोले, "जिसमें कोई कमी न हो, जिस में सभी गुण हों, जो जिस काम को हाथ लगाये उस को पक्के ही छोड़ और जो बुराई से भलाई को जीत ले, ऐसे ही आदमी को बड़ा कहते हैं न, विनोद ?"

"जी, जी हां," विनोद बोला।

"ठीक है," श्री गोखले बोले, "मुझे तुम से ऐसे ही उत्तर की आशा थी। परन्तु यह तो अब बताओ कि ऐसा आदमी बनने के लिए कौन-कौन सी बातों की आवश्यकता है ?"

अल्पावकाश के समय वह दूसरों से तेज दौड़ सकता था। हॉकी की गेंद को लेकर बढ़ता तो कोई छीन न सकता—परन्तु पढ़ाई—बस इसी में उसकी नानी मरती थी। मन मार कर पढ़ने बैठता तो अन्य विचारों में भटकने लगता। पाठशाला के प्रधानाध्यापक श्री गोखले ने कई बार उससे पढ़ाई तथा कम अंकों के विषय में बातचीत की और उसे शिक्षा-प्राप्ति का महत्व बताने का प्रयत्न किया। परन्तु मन को वश में रखने की बात सिखाना सरल न था, ऐसी बात विनोद को भड़का देती। अतः श्री गोखले ने बड़े धैर्य से काम लिया। उन्हें ज्ञात था कि विनोद को किसी योग्य बनाना टेढ़ी खीर है। विनोद का सौभाग्य था कि उसे धैर्यवान और दयालु शिक्षक मिले। श्री गोखले को यह भली भांति ज्ञात था कि लड़के में बुद्धि है, योग्यता है। उसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि उसके मन को भटकने से रोक कर काम में लगाया जाए। श्री गोखले ने सोचा कि किसी-न-किसी दिन अवसर पाकर मुझे भी इसके मन में उच्च अभिलाषा जागृत करनी ही पड़ेगी। वह ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे।

एक दिन ऐसा हुआ कि विनोद को व्याकरण का पाठ याद करना था, परन्तु विनोद की यह दशा थी कि मानो किसी जंगली पक्षी को पकड़कर पिंजड़े में बन्द कर दिया हो, एक अजीब बेचैनी थी। जब पाठ सुनाने का समय आया, तो कक्षा के सब विद्यार्थियों में विनोद ही फिसड्डी रहा।

शिक्षक ने अपने इस सुन्दर और योग्य शिष्य पर एक कड़ी नजर डाली। उन्होंने सोचा कि बस अब अवसर आ गया, इसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। उन्होंने निश्चय कर लिया कि विनोद के बढ़ते हुए आलस्य का, पढ़ाई में कमजोरी का और व्यर्थ की बातें सोचते रहने का अन्त होना चाहिए। उसे अपने मन को वश में रखना सीखना ही चाहिए, और फिर बात तो तब है कि विनोद स्वयं अपनी समझ और बुद्धि को काम में लाकर आत्म नियंत्रण की ओर अग्रसर हो और अपने चंचल मन के विचार-प्रवाह में न बहकर प्रत्येक बात को गम्भीरता और सतर्कता से सोचे, और प्रत्येक कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सके।

"विनोद," गोखले जी बोले, "क्या तुम, बड़े आदमी बनना चाहते हो?"

विनोद ने मुस्काते हुए तुरन्त उत्तर दिया, "जी हां।"

"पूर्ण, सच्चा और अच्छे गुणों वाला आदमी," गोखले जी ने अपने प्रश्न को और स्पष्ट करते हुए पूछा, "जो जिस काम को हाथ लगाए, उसे करके ही छोड़े, जो बुराई को भलाई से जीत सके?"

"जी-जी हां," विनोद बोला।

"ठीक है," श्री गोखले बोले, "मैं पहले ही सोचता था कि तुम ऐसा ही उत्तर दोगे। अच्छा, परन्तु यह तो बताओ कि अच्छे मनुष्य में गुण कौन से होते हैं?"

विनोद अच्छे आदमी के गुण जानता था। उस के मुख से ऐसा प्रतीत होता था मानो अच्छे आदमी के विषय में उसके विचार स्वतन्त्र हों, परन्तु वह उन्हें प्रकट नहीं कर सका।

"हां तो बोलो," श्री गोखले ने पूछा, "अच्छे आदमी में कौन-कौन सी बातें होती हैं?"

"तुम में योग्यताएं हैं, विनोद, और मुझे इस बात की बड़ी खुशी है। यही योग्यताएं तुम्हें बड़ा मनुष्य बना सकती हैं, तुम भी अन्य बातों में साहस से काम लेकर उन्नति कर सकते हो, मुझे इस बात का गर्व है। मुझे इस से प्रसन्नता होती है। परन्तु तुम्हारा ढीलापन और आलस्य बड़ी बाधा डाल रहा है! मालूम है कहां?"

"जी," विनोद बोला, "शायद आपका संकेत मेरी पढ़ाई की ओर है।"

"बिलकुल ठीक, यही तो है सारी बात, अब देखो न तुम कितने तीव्र-बुद्धि हो, तगड़े हो, और चाहो तो बात की बात में उन्नति के शिखर पर पहुंच सकते हो—और बड़े मनुष्य बन सकते हो, तुम में ये सारे गुण विद्यमान हैं। परन्तु बात यह है कि तुम रोज कक्षा में आकर बैठते हो, परन्तु बेचैन से रहते हो और अपना समय नष्ट करते हो, तुम्हारे हाथों में महत्वपूर्ण काम होता है, परन्तु तुम उसे पूरा नहीं कर पाते, कारण यह कि तुम्हें आलस्य आ दबाता है। सच तो यह है कि तुम अपनी बुद्धि का विकास नहीं चाहते, महानुभावों के उच्च तथा सुन्दर विचारों पर तर्क नहीं करना चाहते, उन में तुलना नहीं करना चाहते उन पर सोच-विचार करना नहीं चाहते, क्यों? इसलिए कि इस में आवश्यकता है सच्चे प्रयत्न की, और तुम प्रयत्न करना नहीं चाहते। मुझे तो ऐसा लगता है, ये बड़े-बड़े गुण होते हुए भी, कहीं ऐसा न हो कि तुम बड़े आदमी, अनुभवी और विचारशील आदमी न बन सको। क्यों? तुम में दोष यह है कि तुम *अपना काम उत्साह के साथ आरम्भ नहीं करते, तुम मन में यह नहीं ठान पाते कि—'मैं इसे करके ही छोड़ूंगा।'*

मैदान में तो तुम्हीं हो और, भई विनोद, युद्ध तुम्हीं को करना है। कोई और तुम्हारे बदले नहीं लड़ेगा। और इस युद्ध में एक ओर है कर्तव्य व संयम और दूसरी ओर है बुरा स्वभाव व आलस्य, होगा क्या? तुम अपनी पढ़ाई पर विजय प्राप्त करके, उन्नति करके बड़ा आदमी बनना चाहते हो या फिर पढ़ाई से हार मानकर अपनी बुद्धि को अविकसित तथा अनुन्नत रखना चाहते हो, एक तीक्ष्ण-बुद्धि और साहसपूर्ण चरित्र वाला आदमी न बन कर ऐसे-के-ऐसे ही रह जाना चाहते हो? क्या तुम जीवन-संग्राम में एक साधारण सैनिक ही रहना चाहते हो या उच्चाधिकारी बनकर अपना और अन्य लोगों का नेतृत्व करना चाहते हो?"

विनोद को बड़ा आदमी बनने की बड़ी इच्छा थी, वह इससे कम और कुछ नहीं सोच सकता था। वह अपनी कमजोरियों पर बड़ा लज्जित हुआ। श्री गोखले ने फिर उस दिन आगे और कुछ नहीं कहा। वह समझ गए थे कि विनोद अपनी समस्या को जान गया है, इसलिए उन्होंने उसे इस पर सोच-विचार करने को छोड़ दिया।

दूसरे दिन विनोद जमकर पढ़ाई करने बैठा।

"कहो भई," श्री गोखले ने पूछा, "तो तुम ने पढ़ाई पर विजय प्राप्त कर लेने का निश्चय कर ही लिया, न?"

"मैं करके ही छोड़ूंगा, साहब," विनोद ने बड़ी तत्परता और दृढ़ता से उत्तर दिया, "आप देखते तो जाइए, मैं करता हूं या नहीं।"

विनोद को इन बातों का ज्ञान तो न था परन्तु उसके चेहरे से ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों ऐसे आदमी के विषय में उसके अपने स्वतन्त्र विचार हों, वह विचारों को प्रकट न कर सकता हो।

हां-हां, बोलो विनोद," शिक्षक ने सहारा दिया, "बताओ तुम्हारे विचार में ऐसे आदमी में कौन-कौन से गुण होने चाहिए।"

"जी," विनोद बोला, "ऐसा आदमी बहुत भला होता है, वह कोई नीच काम नहीं करता और उसे अपने महत्त्व का ज्ञान होता है।"

"परिभाषा तो ठीक ही है, विनोद," श्रीगोखले बोले, "तो तुम्हारे विचार में किसी को बड़ा आदमी बनने में सहायता कौन देता है?"

"जी, मैं ठीक तो नहीं कह सकता," विनोद ने उत्तर दिया, "शायद उसके पिता ..."

"हां, अच्छा पिता बहुत कुछ सहायता कर सकता है, समझदार शिक्षक भी बहुत कुछ सहायता कर सकता है, तथा अच्छी पुस्तकें और अच्छे संगी-साथी भी बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं, परन्तु प्रयत्न इस में विशेष रूप से स्वयं बड़ा बनने वाले का ही होता है। मनुष्य सब से अधिक अपने ही परिश्रम से ऊंचा उठ सकता है, बड़ा बन सकता है, यह उसका अपना काम होता है, अन्य लोग और पुस्तकें चाहे कितनी ही सहायता क्यों न कर सकें, परन्तु अपने परिश्रम द्वारा ही सब कुछ होता है। ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को योग्यताएं दी हैं, सामर्थ्य प्रदान किया है, परन्तु इन में विकास होता है प्रत्येक मनुष्य के अपने उद्योग और श्रम द्वारा ही। ईश्वर की इस देन की रक्षा करनी चाहिए और इस को उन्नत करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। जीवन में ये योग्यताएं इतनी अधिक होती हैं कि इन के विकास द्वारा सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। अब कोई मनुष्य जीवन में अच्छा बने या बुरा, नाम कमाये या बेनाम होकर जीये, यह अपने-अपने निश्चय पर निर्भर होता है। क्या तुमने कभी इस विषय में कुछ सोचा है, विनोद?"

"जी, कुछ अधिक तो नहीं," विनोद ने उत्तर दिया।

"ठीक है," श्री गोखले बोले, "मेरा अनुमान ठीक ही निकला, मैं समझता था कि तुमने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। देखो बड़ा मनुष्य बनने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता। यदि चरित्र में कुछ दोष हों तो उन्हें दूर करना होता है। यदि शीघ्र क्रोध आ जाता हो, तो ऐसे घृणास्पद क्रोध को वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिए, नहीं तो ये दोष उन्नति के मार्ग में रोड़े बन जाएंगे। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि किसी काम में आलस्य न किया जाये। यदि शिक्षा अथवा प्रशिक्षण में कोई ऐसी बात हो जिस में मन न लगता हो, तो दृढ़ निश्चयपूर्वक मन को वश में रखना चाहिए जिससे ऐसा न हो कि मन के वश में होकर उन्नति का अवसर खो बैठें।

"तुम में योग्यताएं हैं, विनोद, और मुझे इस बात की बड़ी खुशी है। यही योग्यताएं तुम्हें बड़ा मनुष्य बना सकती हैं, तुम भी अन्य बातों में साहस से काम लेकर उन्नति कर सकते हो, मुझे इस बात का गर्व है। मुझे इस से प्रसन्नता होती है। परन्तु तुम्हारा ढीलापन और आलस्य बड़ी बाधा डाल रहा है! मालूम है कहां?"

"जी," विनोद बोला, "शायद आपका संकेत मेरी पढ़ाई की ओर है।"

"बिलकुल ठीक, यही तो है सारी बात, अब देखो न तुम कितने तीव्र-बुद्धि हो, तगड़े हो, और चाहो तो बात की बात में उन्नति के शिखर पर पहुंच सकते हो—और बड़े मनुष्य बन सकते हो, तुम में ये सारे गुण विद्यमान हैं। परन्तु बात यह है कि तुम रोज कक्षा में आकर बैठते हो, परन्तु बेचैन से रहते हो और अपना समय नष्ट करते हो, तुम्हारे हाथों में महत्वपूर्ण काम होता है, परन्तु तुम उसे पूरा नहीं कर पाते, कारण यह कि तुम्हें आलस्य आ दबाता है। सच तो यह है कि तुम अपनी बुद्धि का विकास नहीं चाहते, महानुभावों के उच्च तथा सुन्दर विचारों पर तर्क नहीं करना चाहते, उन में तुलना नहीं करना चाहते उन पर सोच-विचार करना नहीं चाहते, क्यों? इसलिए कि इस में आवश्यकता है सच्चे प्रयत्न की, और तुम प्रयत्न करना नहीं चाहते। मुझे तो ऐसा लगता है, ये बड़े-बड़े गुण होते हुए भी, कहीं ऐसा न हो कि तुम बड़े आदमी, अनुभवी और विचारशील आदमी न बन सको। क्यों? तुम में दोष यह है कि तुम अपना काम उत्साह के साथ आरम्भ नहीं करते, तुम मन में यह नहीं ठान पाते कि—'मैं इसे करके ही छोड़ूंगा।'

मैदान में तो तुम्हीं हो और, भई विनोद, युद्ध तुम्हीं को करना है। कोई और तुम्हारे बदले नहीं लड़ेगा। और इस युद्ध में एक ओर है कर्तव्य व संयम और दूसरी ओर है बुरा स्वभाव व आलस्य, होगा क्या? तुम अपनी पढ़ाई पर विजय प्राप्त करके, उन्नति करके बड़ा आदमी बनना चाहते हो या फिर पढ़ाई से हार मानकर अपनी बुद्धि को अविकसित तथा अनुन्नत रखना चाहते हो, एक तीक्ष्ण-बुद्धि और साहसपूर्ण चरित्र वाला आदमी न बन कर ऐसे-के-ऐसे ही रह जाना चाहते हो? क्या तुम जीवन-संग्राम में एक साधारण सैनिक ही रहना चाहते हो या उच्चाधिकारी बनकर अपना और अन्य लोगों का नेतृत्व करना चाहते हो?"

विनोद को बड़ा आदमी बनने की बड़ी इच्छा थी, वह इससे कम और कुछ नहीं सोच सकता था। वह अपनी कमजोरियों पर बड़ा लज्जित हुआ। श्री गोखले ने फिर उस दिन आगे और कुछ नहीं कहा। वह समझ गए थे कि विनोद अपनी समस्या को जान गया है, इसलिए उन्होंने उसे इस पर सोच-विचार करने को छोड़ दिया।

दूसरे दिन विनोद जमकर पढ़ाई करने बैठा।

"कहो भई," श्री गोखले ने पूछा, "तो तुम ने पढ़ाई पर विजय प्राप्त कर लेने का निश्चय कर ही लिया, न?"

"मैं करके ही छोड़ूंगा, साहब," विनोद ने बड़ी तत्परता और दृढ़ता से उत्तर दिया, "आप देखते तो जाइए, मैं करता हूं या नहीं।"

"शाबाश, यह बात है", श्री गोखले बोले, "मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होके रहोगे, और एक दिन बड़े आदमी बनकर ही दम लोगे।"

इस के बाद परिश्रम तो विनोद को बहुत करना पड़ता था, परन्तु अब वह जाग गया था। उसे बड़ा आदमी बनने की सम्भावनाएं दिखाई देने लगी थीं। उसने निश्चयपूर्वक काम करना आरम्भ कर दिया था और आलस्य पर विजय प्राप्त कर ली थी।

बहुत साल के बाद वह बड़ा होकर श्री गोखले से मिलने गया। वह बोला—"देखिए साहब, आप ने कहा था न कि या तो जीवन में बाजी जीत लो या फिर हार जाओ। मैं ने आप की बात को गांठ बांध लिया था। इसी से प्रेरणा पाकर मैं अपनी अभिलाषाएं पूर्ण कर सका हूं।"

"यह बात नहीं है, विनोद," श्री गोखले ने उत्तर दिया, "बल्कि तुम्हारे अपने, 'मैं कर ही छोड़ूंगा' वाले निश्चय द्वारा ही तुम्हें यह सफलता प्राप्त हुई है।"

सफलता के रहस्य

आनन्द पाठशाला से लौटा तो उसका मुंह उतरा हुआ था। जैसे ही वह बरामदे में पहुंचा उस के पिता ताड़ गये कि कोई न कोई बात अवश्य हुई है। आनंद कुर्सी में धंस गया। उसके पिता ने पूछा, "कहो भई कुशल तो है, मुंह उतरा-उतरा सा क्यों है ? क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं—यह है न मुखर्जी का लड़का," . . . . आनन्द बोलते-बोलते रुक गया।

"हां-हां," उसके पिता ने उत्सुकता से पूछा, "तो क्या हुआ ? क्या किया उसने तुम्हारा ?"

"किया तो कुछ नहीं" आनन्द बोला, "पाठशाला में उसे प्रधान विद्यार्थी चुन लिया गया है।"

"तो क्या हुआ ?" उस के पिता ने प्रश्न किया, "क्या तुम्हें अपने चुने जाने की आशा थी ?"

"मेरी इच्छा तो यही थी," आनन्द ने उत्तर दिया, "परन्तु प्रमोद मुखर्जी के चुनाव में तो पक्षपात किया गया है, और मुझे . . . ."

"क्या तुम को ठीक-ठीक मालूम है कि उस के चुनाव में पक्षपात किया गया है ?" उसके पिता ने पूछा।

"पक्षपात ही किया गया है ?" आनन्द बोला, "अधिकांश अध्यापक बंगाली हैं, उसके जाति-भाई ठहरे और फिर प्रमोद प्रधानाध्यापक को कुछ न कुछ भेंट भी करता रहता है।"

"भई, हमारा अपना विचार तो ऐसा नहीं," उसके पिता ने कहा, तुम्हारे प्रधानाध्यापक श्री चौधरी को हम अच्छी तरह जानते हैं, वह ऐसे आदमी नहीं। हो सकता है कि प्रमोद को यह पदवी योग्यतानुसार प्राप्त हुई हो। वह है भी तो बहुत अच्छा और मेहनती लड़का।"

"हां, यह तो मुझे मालूम है, आनन्द बोला, "पर . . . ."

"सुनो, तुम्हें एक बात बता दें," उसके पिता बोले, "हमारा ख्याल है कि इसके भी कई कारण हैं कि कुछ लोग तो जीवन में आगे बढ़ जाते हैं, और कुछ पीछे ही पिछड़ जाते हैं। यह तो हम नहीं कहते कि प्रत्येक बात में सदैव न्याय ही होता है, और अन्याय नहीं होता। परन्तु सामान्य रूप से इसका

भी कोई कारण होता है कि पाठशाला में एक लड़का दूसरे से अधिक सर्वप्रिय और अधिक सफल सिद्ध होता है। सफलता के भी अनेक रहस्य होते हैं। चाहे वह सफलता पाठशाला की पढ़ाई से सम्बन्ध रखती हो चाहे खेल-कूद से।"

"पिताजी," आनन्द बोला, "मुझे वे रहस्य बता दीजिए।"

"अच्छा तो सुनो," उस के पिता बोले, "ये रहस्य हैं, प्रत्येक कार्य में सच्ची लगन अर्थात् जो कुछ किया जाए, भली-भांति और ईमानदारी से तथा अपना कर्तव्य समझकर किया जाए। कहते हैं कि जो व्यक्ति छोटे-छोटे कामों में ईमानदारी दिखाता है, वह बड़े-बड़े कामों में भी ईमानदार सिद्ध होता है। इस विषय से सम्बन्धित एक कहानी भी है। कोई व्यापारी व्यापार के लिए परदेश को निकला; जाते समय उसने अपने प्रत्येक कारिन्दे को सौ-सौ रुपये दिए और कहा कि जब तक मैं आऊं, तुम इस धन से व्यापार करके अधिक धन कमा रखना। व्यापारी के लौट आने पर एक कारिन्दे ने आकर उसे पांच हजार रुपए दिए। 'शाबाश,' व्यापारी बोला, 'तुमने बड़ी ईमानदारी से काम किया है। मैं तुम्हें अपने दस गांवों का मुखिया बनाता हूं।' इससे विदित होता है कि बड़ी-बड़ी सफलताएं प्राप्त करने के लिए छोटी-छोटी बातों में ईमानदारी दिखाना आवश्यक है।"

आनन्द गम्भीर हो गया उसे अपनी कमजोरी का ज्ञान हो गया। उसके पिता ने कहा, "एक बार ऐसा हुआ कि कोई शिल्पकार आले में रखने के लिए एक मूर्ति बना रहा था। बनाते-बनाते उसके मन में एक विचार उभरा। उसने सोचा कि यदि इस मूर्ति की पीठ किसी को दिखाई न दी तो मेरा परिश्रम अकारथ ही जाएगा, तो फिर मैं इतना परिश्रम क्यों करूं? परन्तु क्षण भर में उसका विचार बदल गया। उसने सोचा यदि और कोई नहीं देखेगा तो ईश्वर तो देखेगा। और उसने अपना काम जारी रखा; मूर्ति के सामने का भाग और पीछे का भाग दोनों ही कला की दृष्टि से दोषरहित थे।

"अतः यदि तुम चाहो कि कोई पुरस्कार मिले; यदि चाहो कि अच्छे-से-अच्छे काम मिलें, बड़ी-से-बड़ी पदवी मिले तो प्रत्येक कार्य को पूर्ण रूप से करने का अभ्यास करो। पढ़ाई करो अन्य काम, परन्तु सदैव मन में यह सोचे रखो कि ईश्वर मुझे देख रहा है। जो लोग जरा-जरा सी बात में बेईमानी कर बैठते हैं, उनकी बड़ी-बड़ी बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

"मैं भी तो काम करने में अपनी ओर से कोई कसर बाकी नहीं रखता," आनंद बोला।

"हां,कभी-कभी," उसके पिता ने कहा, "परन्तु बहुधा तुम यह कह देते हो कि मुझे अमुक कार्य अच्छा नहीं लगता, और इसके फलस्वरूप तुम्हारा काम ठीक तरह नहीं हो पाता। सफलता प्राप्ति के हेतु, तुम्हें प्रत्येक कार्य को भली-भांति करने का दृढ़ संकल्प करना पड़ेगा, चाहे कोई कार्य कितना ही अप्रिय क्यों न हो।—यहां तक कि प्रतिदिन के एक ही ढर्रे पर होने वाले कामों में भी दिलचस्पी पैदा कर लेनी चाहिए।

"किसी ने कहा है कि प्रत्येक काम में बाल की खाल निकालना प्रतिभा का चिन्ह होता है। अनाड़ी व्यक्ति यही कहता है कि अरे कोई ऐसा भारी काम नहीं, बांयें हाथ का खेल है, आखिर इसके करने में क्या रखा है? परन्तु इस के विपरीत अनुभवी व्यक्ति कार्य के विषय में यही कहता है कि इसका हर पहलू कठिन है—यह है सफलता प्राप्तिका प्रथम रहस्य।"

"और दूसरा ?" आनन्द ने पूछा।

"घोर परिश्रम," उसके पिता ने बताया।

"अरे बाप-रे-बाप," आनन्द बोल उठा।

"अब तुम जो भी कहो," उसके पिता बोले, "पर तथ्य यह है। बात यह है कि आजकल के लड़के-लड़कियां उन्नति के शिखर पर पहुंचना तो चाहते हैं, परन्तु बिना मूल्य चुकाए, और उन्नति का मूल्य होता है, घोर परिश्रम। इस परिश्रम का अर्थ यह है कि जब तक आदमी अपना काम भली-भांति समाप्त न कर ले, तब तक उसे न तो इधर-उधर देखना चाहिए और न ही किसी अनावश्यक बात पर ध्यान लगाने चाहिए।"

"ऐसा तो मैं भी करता हूं, पिताजी," आनन्द बोला।

"हां कभी-कभी करते तो हो," उस के पिता बोले, "परन्तु यह भी तो कहते हो कि मेरा ध्यान इस बात से उचट गया और उस बात से उचट गया।"

आनंद के मुंह पर मुस्कान आ गई उसे ज्ञात था कि मेरे पिताजी ठीक ही कह रहे हैं।

"हम तुम्हें बताते हैं," उसके पिता बोले, "सफलता प्राप्ति के हेतु काम में इस प्रकार संलग्न रहना चाहिए कि पता भी न चले कि हमारे चारों ओर हो क्या रहा है ? इस प्रकार कार्य सम्पन्न होते हैं, और यह हुआ सफलता प्राप्ति का तीसरा रहस्य, अर्थात् धैर्य तथा दीर्घ प्रयत्न।"

"क्या मतलब ?" आनन्द ने प्रश्न किया।

"इसका मतलब है काम में व्यस्त रहना," उसके पिता बोले, "घड़ी भर तो जी लगाकर कुछ काम कर लिया, और फिर बेगार टालने लगे—इससे काम नहीं चलता। चाहे कुछ ही क्यों न हो, बस अपने काम में लगे रहना चाहिए। इसी बात से अपनी जीत होती है, आनन्द। हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिए। यदि सफलता के शिखर पर पहुंचना हो तो निरन्तर प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। इस के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं।"

"अच्छा, चौथा रहस्य ?" आनन्द ने पूछा।

"उद्योगशीलता," उसके पिता बोले, "इसका अर्थ यह है कि समय का पूर्ण लाभ उठाया जाए। समय का जीवन में बहुत बड़ा मूल्य होता है—हीरे—मणियों से भी कहीं अधिक मूल्यवान है समय।

"टकसाल में जहां सरकार सिक्के ढलती है, बड़ी सावधानी से धातु का एक-एक टुकड़ा तोला और एक कमरे में से लाया जाता है, ताकि ऐसा न हो कि कोई टुकड़ा खो जाए। उन कारखानों में जहां 'प्लेटिनम' और सोने जैसी धातुओं का काम होता है, वहां धुंआ निकलने के खम्भों तक में जमी हुई धूल इकट्ठी कर ली जाती है, ताकि बहुमूल्य धातु का तनिक सा अंश भी इधर-उधर न होने पाए। यह ही नहीं, अपितु जब काम करने वाले हाथ मुंह और कपड़े धोते हैं तो गन्दा पानी भी नालियों द्वारा हौजों में इकट्ठा कर लिया जाता है।

"परन्तु समय 'प्लेटिनम' और सोने से भी कहीं अधिक मूल्यवान है यदि प्रत्येक क्षण का एक हजार रुपये मूल्य ही लगाया जाए तो सोचो, कि तुम एक-एक क्षण को व्यापारिक दृष्टि से कितना महत्व दोगे।"

"इतना पैसा कौन देने लगा है ?" आनन्द ने कहा।

"यह तो ठीक है कि इतना पैसा कोई नहीं देगा," . . . .

उस के पिता बोले, "और यह भी विशेषकर तुम्हारी अवस्था के लड़के को, परन्तु फिर भी एक-एक क्षण का मूल्य बहुत अधिक होता है। क्षण-क्षण मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता रहता है। सोचो यदि उपयोगी तथा उत्कृष्ट चरित्र का निर्माण हुआ तो क्या एक क्षण का भी मूल्य रुपए-पैसों में आंका जा सकता है ?"

"और कोई रहस्य, पिताजी," आनन्द ने मुस्कराते हुए पूछा।

"हां बस एक और है," उसके पिता ने कहा, "और वह है दूसरों का लिहाज रखना, और उनके प्रति मैत्री भाव बनाए रखना सोचो, तो यह रहस्य उपरोक्त सभी रहस्यों से अधिक मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि काम में ईमानदार होना, परिश्रमी होना, काम में व्यस्त रहना, और समय का मूल्य समझ कर उद्योगशील होना तो सम्भव है, परन्तु यदि स्वभाव बुरा हुआ तो इन सब गुणों पर पानी फिर जाता है !"

यह सुनकर आनन्द के चेहरे पर गम्भीरता के चिन्ह प्रकट होने लगे, क्योंकि अन्तिम बात कहकर उसके पिता ने उसकी सबसे बड़ी कमजोरी की ओर संकेत कर दिया था।

"ऐसा व्यक्ति बहुत मुश्किल से मिलता है जो प्रेमपूर्वक दूसरों से निभाव कर सके जो दूसरों के दोषों पर दृष्टि न रखता हो, और बात-बात पर खिन्नता प्रकट न कर दे, बड़बड़ा न उठे तथा जो प्रत्येक बात में सन्देह न करता हो। बाइबल में एक कहानी है कि बेबिलॉन के बादशाह नबूकदनजर के दरबार में दानिय्येल नामक एक बन्दी था—'उसका पद सारे प्रधानों और राजाओं से ऊंचा किया था क्योंकि वह उत्तम स्वभाव का था।' "

"पिताजी," आनंद बोला, "मेरे मन में प्रमोद के प्रति एक नया विचार जन्म ले रहा है।"

"क्या मतलब ?" उसके पिता ने पूछा।

"यही कि प्रमोद ही को प्रधान विद्यार्थी क्यों चुना गया," आनन्द बोला, "अब मेरी समझ में आ गया कि सचमुच वही एक ऐसा लड़का है जिस में सारे गुण विद्यमान हैं। वह दूसरों से प्रेमपूर्वक मिलता जुलता है, वह प्रत्येक रूप से अच्छा लड़का है।"

"यही—तो—बात—है," उसके पिता हंसते हुए बोले, "वह सफल इसलिए हुआ है कि सफलता के नियमों को जानता है और उनका पालन करता है।"

"शायद वह इन पांचों रहस्यों को जानता हो," आनन्द बोला।

"हो सकता है," उसके पिता बोले, "मैंने तो उसे बताए नहीं, हां तुम्हें बताए हैं, तुम उन्हें अब जान गए हो, इसलिए तुम स्वयं भी सफल हो सकते हो।"

आनन्द की आंखों में एक नई चमक आ गई और उसने कहा—"पिताजी, आप ठीक ही कहते हैं, शायद अगले वर्ष मैं चुन लिया जाऊं।"

शिष्टाचार व नम्रता

हम जहां भी जाएं, हमें चाहियें कि प्रेम, नमृता और प्रसन्नता का वातावरण बनायें रक्खें। जिस घर में बच्चे हों, वहां तो विशेषकर ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती हैं ताकि बच्चों के चरित्र-निर्माण में सहयक हो।

नमृता का "स्वर्णिम नियम" इस कथन में बड़ी ही अच्छी तरह स्पष्ट किया गया हैं कि जिस प्रकार के बरताव की आशा आप अपने प्रति दूसरों से रखतें हों, वैसा ही बरताव आप भी उन के साथ कीजियें। जो कहावतें बालक को समझ आने पर कंठस्थ करानी चाहियें, यह कथन उन में से एक हैं। बहुधा बालक इस बात की ओर ध्यान ही नहीं देता कि दूसरों को मेरे साथ कैसा बरताव करना चाहियें; इस का फल यह होता हैं कि वह स्वयं भी दूसरों के साथ उचित बरताव नहीं कर पाता। और तो और वयस्क व्यक्ति भी इस बात में बहुत हद तक बच्चों की तरह ही लापरवाही बरततें हैं।

यदि किसी परिवार के लोग किसी संगीतक में उपस्थित हों, तो संगीत आरम्भ हो जाने पर परस्पर बात-चीत करना या काना-फूसी करना उचित नहीं। न तो ऐसा व्यवहार गाने-बजाने वालों को ही अच्छा लगता हैं, और न ही अन्य उपस्थित व्यक्तियों को भला मालूम होता हैं। सचमुच यह बहुत बुरी बात हैं और उपरोक्त "स्वर्णिम नियम" के विपरीत हैं। अतः ऐसे अवसरों पर बच्चों को चतुराई से समझा देना चाहियें कि देखो भई, यदि तुम चुप-चाप नहीं रहोगे, तो न तो गाने वाले अच्छी तरह गा सकेंगे और न ही बजाने-वाले भली भांति बजा सकेंगे। बीच-बीच में बोलने और काना-फूसी करने से गाने बजाने वालों का ध्यान बट जाता हैं और सारा मजा किरकिरा हो जाता हैं।

माता-पिता स्वयं आदर्श प्रस्तुत करें

लोग नम्र व विनीत व्यक्तियों की संगति में प्रसन्न रहतें हैं और धृष्ठ व असभ्य व्यक्तियों के प्रति घृणा प्रकट करतें जरा भी नहीं हिचकिचाते। इतना होतें हुए भी बहुत से माता-पिता अपनी संतान के शिष्टाचार-शिक्षण में लापरवाही बरततें हैं। यही नहीं, अपितु बहुधा कुछ माता पिता तो इस प्रकार के शिक्षण को चरित्र-दौर्बल्य का कारण और निरा आडम्बर समझतें हैं। परन्तु यदि हम यह चाहतें हैं कि हमारे अपने आचार-विचार से अन्य व्यक्ति प्रभावित हों, तो हमें स्वयं शिष्ट व विनीत बनना पड़ेगा। यही नहीं, बल्कि बच्चों के साथ भी शिष्टता का व्यवहार करना उतना ही आवश्यक होता हैं, जितना बड़े लोगों के साथ। शब्दों की अपेक्षा नमूने का कहीं अधिक प्रभाव पड़ता हैं।

R. Kumar Paul

स्वाभाविक रीति से निर्मित शिष्टाचार

यदि घर पर स्वयं माता-पिता अपने आचरण में शिष्टाचार बनाए रक्खें, और अपने बच्चों को भी सिखाएं, तो धीरे-धीरे बच्चे अपने आप उन का अनुकरण करने लगते हैं। अत: बच्चों के सामने अच्छे नमूने रख कर ही शिष्ट स्वभाव का निर्माण करना चाहिये।

एक माता को अपने कमरे में एक ओर से दूसरी ओर जाना था। बीच में बैठा हुआ उस का बेटा एक पुस्तक में से तस्वीरें देख रहा था। उस के सामने थी बत्ती। माता को बत्ती और लड़के के बीच में से हो कर जाना था। माता के बत्ती के सामने से निकलने से तस्वीरों पर अंधेरा होना अनिवार्य था। इस बात को समझते हुए उस ने अपने बेटे से कहा—"क्षमा करना बेटे, मेरे इधर से निकलने से तुम्हारी पुस्तक पर अंधेरा आएगा।"

बालक ने सिर उठा कर अपनी माता को देखा और पूछा—"क्यों माता जी, आप मुझ से इस प्रकार क्यों बोल रही हैं?"

उस की माता ने उत्तर दिया—"बिना पूछे इस तरह निकल जाना अच्छी बात नहीं। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई बाहर का आदमी होता, तो यह शिष्ट और विनीत व्यवहार न होता कि मैं बिना पूछे उस के और रोशनी के बीच में से निकल जाती। तो क्या मैं अपने प्यारे से बेटे से अशिष्ट व्यवहार करूं?"

क्षण भर सोचने के पश्चात् लड़के ने पूछा, "तो मैं क्या उत्तर दूं, माता जी?"

माता को ऐसे अवसर के लिये उपयुक्त उत्तर बताने और शिष्टाचार की अन्य बातें सिखाने का मौका मिल गया। जब यह लड़का बड़ा हो कर महाविद्यालय में पहुंचा तो उस के शिष्ट चलन की सभी प्रशंसा करने लगे। सच तो यह है कि माता की सीख द्वारा सदाचार उस के स्वभाव का एक अंग बन गया था।

जिस प्रकार के व्यवहार की आशा माता-पिता बच्चों से रखते हों, उसी प्रकार का नमूना स्वयं प्रस्तुत करें, यही नहीं, बल्कि उचित शिक्षण भी करें। अच्छी बातें बच्चों को सिखाइये, परन्तु आदर्श प्रस्तुत करके।

स्वर्णिम नियम का प्रयोग

नम्र होने का अर्थ है इस "स्वर्णिम नियम" का प्रयोग कि जिस प्रकार के बरताव की आशा आप अपने प्रति दूसरों से रखते हों, वैसा ही बरताव आप भी उन के साथ कीजिये, परन्तु नम्रता के अन्तर्गत कुछ और भी ऐसी बातें आ जाती हैं जो बच्चों को इस "स्वर्णिम नियम" से कोई सम्बन्ध रखती प्रतीत नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि बालक बिना हाथ-मुंह धोए खाना खाने बैठ जाये, परन्तु बड़ों के लिये भोजन करने से पूर्व हाथ धो लेना और कुल्ला कर लेना शिष्टता का सूचक है। अत: बालकों को भी यह बात सिखाइये-समझाइये, क्योंकि मैले मुंह से भले व सभ्य लोगों के साथ बैठ कर खाना भद्दी सी बात है।

सामाजिक व्यवहार

"मेरी समझ में, दीदी ?" आशा ने अपने शब्दों पर ज़ोर देते हुए उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो जितेन्द्र नाथ ही सब से अच्छा लड़का है।"

"क्यों, भई," मैं ने फिर पूछा, "उस में ऐसी क्या बात है ?"

"मैं बताऊं दीदी ?" मनोहर बीच ही में बोल उठा, "आशा को जितेन्द्र अच्छा लगता है। वह नम्र और सुशील जो ठहरा।"

"तुम जो चाहो कहो, और जितना चाहो चिढ़ाओ," आशा बोली, "पर बात जो है सो है; मैं ने जो कुछ कहा उसके कई कारण हैं। जितेन्द्र भला लड़का है, घर में शांतिपूर्वक रहता है—कूदता, फांदता और हल्लड़ मचाता नहीं फिरता, मुझे भी कभी नहीं छेड़ता-चिढ़ाता। अब उसी दिन की बात है, मेरा पैर फिसल गया, और मैं गिर पड़ी, सभी हंसने लगे, परन्तु हंसा नहीं तो एक जितेन्द्र।"

"भई बात यह है," मनोहर बोला, "आशा तो हर बात में और हर जगह सामाजिक व्यवहार ढूंढती है—सामाजिक व्यवहार !"

"अब इस अकेली को खुश करने के लिए हम सब को चाहिए कि बड़ों की भांति उठें-बैठें, चलें-फिरें और बोलें-चालें," लीला ने चोट की।

"ठीक ही तो है," आशा तुरन्त बोल उठी, "यदि बड़ों के व्यवहार सब को पसन्द हैं, मालूम नहीं हम सब जल्दी से बड़े क्यों नहीं हो जाते !"

"सामाजिक व्यवहार से तुम्हारा क्या मतलब है, मनोहर ?" मैं ने पूछा।

"यही . . . . मेरा . . . . म-त-ल-ब . . . . यह . . , ढंग से बोलना-चालना, उठना-बैठना, चलना-फिरना—विशेषकर उस समय कि हमारे यहां कोई आया हुआ हो, या हम किसी के घर जाएं।"

"उस दिन मास्टर जी ने कहा था कि सामाजिक व्यवहार का अर्थ होता है उत्तम आचरण," राम बोल उठा।

"ठीक है," मैं ने सोचते हुए कहा, "तो बात यह हुई कि जिस ढंग से हम अपनी माता से नहीं, बल्कि श्रीमती लाल से बोलें उसी को सुशीलता कहा जाता है ?"

"बिल्कुल ठीक," आशा बोली।

"परन्तु आओ इस बात पर जरा और विचार करें," मैं ने कहा, "आखिर श्रीमती लाल से बोलते-चालते समय हमें इस प्रकार का व्यवहार क्यों करना चाहिए, और अपनी माता से क्यों नहीं करना चाहिए ?

Adarsh Kumar Anand

क्या हम अपनी-माता को प्यार नहीं करते ? क्या वह हमारे लिए श्रीमती लाल से ज्यादा नहीं ?"

"क्यों नहीं," सब बच्चे एक साथ बोल उठे, "वह हमारे लिए सब से बढ़ कर है।"

"तो फिर क्या कारण है," मैंने कहा, "श्रीमती लाल से तो इस प्रकार का व्यवहार किया जाये कि बात-बात की बात में मधुर व नम्र स्वर से "कृपया" और "क्षमा कीजिए" की रट लगा दी जाए, और अपनी माता से इस प्रकार न बोला-चाला जाए ?"

"भई, यह दूसरी बात है," बच्चे बोले, "हमारी माता तो जानती है कि हमारे दिलों में उनका कितना आदर है।"

"अच्छा, यदि कोई लड़का अपने से छोटे बच्चों का ख्याल रखे, सब से नम्रतापूर्वक बोले-चाले, अपने छोटे भाई-बहन को इतनी सावधानी से उठाए कि वह गिरने न पाए, और हर बात में दूसरों का लिहाज करे, तो क्या वह जितेन्द्र जैसा सुशील नहीं ?" मैं ने कहा, "मेरा तो विचार है कि खेलते-कूदते समय भी उतना ही नम्रता बरतनी चाहिए जितनी घर पर।"

"हां," मनोहर बोला, "पर यह कभी हो सकता है कि हम हंसना-हंसाना सब छोड़ दें।"

"भई, मेरा यह मतलब नहीं," मैं ने समझाते हुए कहा, "मैं यह नहीं कहती कि कोई हंसे-हंसाए न; बाहर मैदान में खूब खेला-कूदा जाए, खूब दौड़ा जाए, और जी भर कर शोर मचाया जाए, पर

कोई भी कोई भी बात बेढंगेपन से न हो। अब रही जितेन्द्र की बात तो वह सचमुच बहुत ही भला लड़का है। सदा हंसता-खेलता रहता है, फिर भी क्या मजाल कि कोई बेढंगी बात हो जाए। यदि बैठा हो और कोई बड़ा आ जाए, तो तुरन्त उठ खड़ा होता है और आने वाले के लिए जगह छोड़ देता है, जब तक वह बैठ न जाए, जितेन्द्र स्वयं नहीं बैठता। यदि गद्दीदार कुर्सी पर बैठा हो और उसकी माता आ जायें तो आप उस पर से उठ जाता है और नम्रतापूर्वक उन्हें उस पर बैठ जाने का आग्रह करता है। यदि कई व्यक्ति दरवाजे में से बाहर निकल रहे हों, तो वह धक्कम-धुक्का करके आगे निकल जाने का प्रयत्न नहीं करता, बल्कि पीछे रुक जाता है और दूसरों को निकल जाने देता है। यदि थका-मांदा आये, तो पानी आदि पिलाता है। और यदि बाहर से आए हुए व्यक्ति को गर्मी के मारे पसीना आ रहा हो, तो पंखा लेकर झलने लगता है। इसी प्रकार की शिष्टता की अनेक बातें करता है। उसे ऐसा करने को कोई कहता नहीं, वह अपने मन से करता है, और फिर सब से बढ़िया बात यह कि अपना समय जरा भी नष्ट नहीं करता।

"इन बातों में वह न केवल श्रीमती लाल का ही विशेष ध्यान रखता है, बल्कि उस का व्यवहार सभी से एक सा है, चाहे अपनी माता के साथ हो, चाहे अपनी चाची जनक से हो, चाहे अपनी छोटी बहन के साथ हो। घर पर, पाठशाला में और खेल के मैदान में वह सभी जगह इस बात का ध्यान रखता है कि कोई अनुचित बात न हो जाए, कोई जरा सी बात में बुरा न मान जाए और किसी को किसी प्रकार का दुःख न पहुंचे। यह भी नहीं कि जब कोई उस के घर आए तभी इस प्रकार का व्यवहार करे, बल्कि यूं कहिए कि शिष्टता और सुशीलता उस के स्वभाव में कूट-कूट कर भरी है उस के प्रदर्शन के लिए *समय और स्थान का बन्धन नहीं—वह सदा और सब के साथ एक सा ही रहता है। सभी से प्रेमपूर्वक* मिलता है—यही तो है सच्चा शिष्टाचार—अर्थात दूसरों का ख्याल रखना कि अपने से किसी को दुःख न पहुंचे, किसी के सुख में विघ्न न पड़े।"

सच्चा अभिमान

विवेक कहता है कि मुझे अभिमान, दम्भ, अधम जीवन तथा असत्य से घृणा है। परन्तु आजकल तो ऐसा प्रतीत होता है मानो अभिमान को प्रायः बुरा समझते ही न हों। उपर्युक्त कहावत में क्रमानुसार अभिमान का स्थान है और विवेक को इस से घृणा है। वास्तव में घृणा अभिमानी व्यक्ति से नहीं होता, अपितु स्वयं अभिमान से होती है—निन्दनीय है अभिमान।

अभिमान है क्या ? शब्दकोश की व्याख्या है—यह समझना कि हम औरों से अधिक योग्य, समर्थ अथवा बढ़कर हैं—सौंदर्य, धन और उच्च पद का मिथ्याभिमान भी इसी के अन्तर्गत आता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर मनुष्य को अपने धन-सम्पत्ति, गुणों, प्रतिभा और अन्य योग्यताओं का अभिमान हो ही क्यों ? जो कुछ भी उस के पास है, वह ईश्वर की ही तो देन है। यदि कोई व्यक्ति देखने में सुन्दर है, तो क्या सुन्दरता उस के अपने प्रयत्नों का फल है ? अतः होना यह चाहिए कि शरीर की इस ईश्वर-दत्त सुन्दरता की पूर्णतया रक्षा की जाए जिस से यह नष्ट न होने पाये। यदि ध्यान रक्खा जाए, तो शरीर का अंग-अंग सुन्दर व सुडौल रह सकता है—प्रकृति तथा माता-पिता की इस देन को सुरक्षित रक्खा जा सकता है। ईश्वर ने ही मनुष्य को सब कुछ दिया है—देखिये न, सिर अपने स्थान पर कैसा जंचता है, ठोड़ी अपनी जगह पर कैसी भली मालूम होती है, धड़ कैसा सीधा है, और अन्य अंग भी अपने-अपने स्थान पर कैसे अच्छे लगते हैं। तो क्या मनुष्य को इस का अभिमान होना चाहिए ? नहीं, यह उचित बात नहीं। आरम्भ से ही ईश्वर ने मनुष्य को आत्मिक, मानसिक और शारीरिक रूप से पूर्ण बनाया है और उस की यही इच्छा रही है कि मनुष्य इसी प्रकार पूर्ण रहे। ईश्वर यही चाहता है कि मनुष्य मेरी दी हुई शक्तियों का इस प्रकार उपयोग करे कि इस पूर्णता में कोई कमी न आने पाये। तो क्या यथार्थ रूप से अब भी अभिमान का कोई स्थान रह जाता है ? नहीं, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर की रचना की और उसे यह भी समझ दी कि इसे सुरक्षित रखने के लिए क्या करना चाहिये।

धन का अभिमान ? परन्तु मनुष्य को इस धन प्राप्ति का सामर्थ्य दिया किस ने ? यदि यह भी ईश्वर की ही देन है, तो अभिमान कैसा, और आप की अपनी श्रेष्ठता जताने का क्या अर्थ ?

बहुत से लोगों को अपनी विशेष योग्यताओं का अभिमान होता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति संगीत-विद्या में कुशल है, तो सम्भवः उस के माता-पिता में से एक अथवा पुरखों में कोई संगीत-विद्या में कुशल रहा होगा।

Photo Service Co

कुछ लोगों को और नहीं तो अपने मकानों पर गर्व होता है।

एक अध्यापक किसी विद्यार्थी की प्रशंसा करते हुए कहता है—"भई यह लड़का तो कमाल का है, कभी कोई शब्द अशुद्ध नहीं लिखता।" इस लड़के के पिता को जानने वाले एक सज्जन बोल उठे हैं, "हां, क्यों न हो, उस के पिता भी तो ऐसे ही हैं।" इस से यह निष्कर्ष निकला कि ईश्वर ने यह योग्यता उस लड़के को उस के पिता के द्वारा प्रदान की है। इसलिये उस लड़के के लिये इस में अभिमान की कोई बात नहीं।

घमंड का सिर नीचा

घमंड के कारण करोड़ों व्यक्तियों का पतन हुआ। स्वर्ग में एक को अपने तेज तथा अपने प्रतापपूर्ण शक्ति के कारण अहंकार हो गया था, जो परिणाम यह हुआ कि स्वर्ग से निकाला गया—शैतान कहलाया—और तभी से वह मनुष्य जाति को अपने राज्य की चमक-दमक की ओर आकर्षित कर

के सन्मार्ग से बहकाने में लगा हुआ है। इसी तरह प्रायः लोगों को अपनी बड़ी-बड़ी योग्यताओं का घमंड हो जाता है। विश्व-इतिहास के आरम्भ से ही अधिकांश लोगों को किसी वास्तविक अथवा कल्पित सम्पत्ति का गर्व होता आया है, अब वह सम्पत्ति चाहे भौतिक हो, चाहे अभौतिक। एक विद्वान लेखक ने अभिमानी लोगों को निम्न शब्दों में चेतावनी दी है—"मैं उस अनुग्रह के कारण जो मुझे मिला है तुम में से हर एक से कहता हूं कि जैसा समझना चाहिए उस से बढ़कर कोई अपने आप को न समझे बल्कि सुबुद्धि के साथ अपने को समझे।"

परन्तु इस विषय पर गम्भीरता से सोचना बहुत कठिन प्रतीत होता है। मनुष्य के लिये अपने गुणों और अपनी कमियों का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कोई सरल बात नहीं, इसीलिये इस कार्य में अधिक गम्भीरता और सुबुद्धि के साथ सोच-विचार करने की आवश्यकता होती है, जिसे न तो कमियों के कारण हीनता की भावना ही उत्पन्न हो, और न ही गुणों के कारण स्वभाव में अहंकार आने पाये।

बच्चों के बनाने-बिगाड़ने में बहुत सीमा तक माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिका का हाथ होता है। अतः बच्चों के शिक्षण में सफलता पानी हो, तो उन्हें घमंड और मिथ्याभिमान से बचाए रखने के लिये यथा-शक्ति प्रयत्न कीजिये।

राष्ट्रों के उदाहरण

यदि बच्चे ने झूठ बोला, या चोरी की, तो माता-पिता तुरन्त ही बच्चे को चेतावनी देते हैं, दण्ड देते हैं और बुरा-भला कहते हैं, परन्तु उन की ओर से अभिमान-प्रदर्शन की माता-पिता को प्रायः परवाह तक नहीं होती, बल्कि उलटा इस आदत को प्रोत्साहन दिया जाता है। इतिहास के पन्ने ऐसे दृष्टांतों से भरे हैं, जिन में मनुष्य को इस बात की सीख मिलती है कि घमंड का दण्ड बहुत कड़ा होता है। कहा भी गया है—"मनुष्य गर्व के कारण नीचा देखेगा"—"विनाश से पहले गर्व और ठोकर खाने से पहले घमंड होता है।"

प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि ये कथन नबूकदनजर, बेलशजर, अबशलोम तथा ऐसे ही अनेकों व्यक्तियों पर पूरे उतरे हैं। प्राचीन लेखों से ज्ञात होता है कि गर्व के कारण एक राष्ट्र के बाद दूसरे ने नीचा देखा है। इस प्रसंग में विशेष उदाहरण हैं इस्राएलियों और यहूदियों के राज्यों के। इन्होंने गर्व से भर कर अन्य राज्यों और अन्य राष्ट्रों की बराबरी करनी चाही। घमंड से इन के सिर फिर गए थे। परन्तु ये प्राचीन इतिहास ही के वृतांत नहीं, आज भी संसार में यही हाल है। एक देश दूसरे से बढ़ कर रहना चाहता है, एक राष्ट्र अपने को दूसरे से अधिक शक्तिशाली सिद्ध करना चाहता है। लोग ईश्वर के मार्ग से कितने दूर हट गए हैं। अतः माता-पिता, शिक्षक-शिक्षिका तथा बालकों के अन्य शुभचिन्तकों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि बच्चों को ऐसी बातें न करने दें, जो ईश्वर को अच्छी न लगती हों।

T. N. Paul Smith

चापलूसी घमंड को जन्म देती है

दुर्भाग्यवश बहुत से लोग छोटी सी बालिका से यह कहते नहीं झिझकते कि तुम तो बड़ी सुन्दर हो, या उस के मुंह पर ही दूसरों से उस की सुन्दरता की बड़ाई करने लगते हैं और उस के सुन्दर वस्त्रों की चर्चा करते हैं और इस प्रकार सज-धज की ओर उस का ध्यान आकर्षित कर बैठते हैं। परिणाम यह होता कि छुटपन से ही उस में दिखावे की भद्दी आदत पड़ जाती है, और उसे चटकीले-भड़कीले वस्त्रों का शौक हो जाता है। परन्तु प्रत्येक बालक-बालिका को चाहिये कि सीधे-सादे, और साफ-सुथरे वस्त्र पहनने की आदत डाले। घमड से बचाने के लिये जो माता-पिता अपने बच्चों को भडकीले कपड़े पहनने से रोकते हैं इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं बच्चों को भद्दे और विचित्र कपड़े न पहना दिये जाएं जिस से उन में हीनता की भावना उत्पन्न हो जाए। वस्त्र "सुन्दर" अवश्य हों परन्तु ऐसे कि उन से पहनने वाले की अच्छी पसन्द प्रकट होती हो और चीज भी चलने वाली हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों के वस्त्रों के विषय में जितना कुछ कम कहा जाए, उतना ही बेहतर होता है। किसी सज्जन व किसी महिला के ओढ़ने-पहनने में जितनी सादगी हो, उतना ही अच्छा, परन्तु यदि कोई विशेषता हो भी तो वह हो बढ़ियापन की।

यदि किसी बालिका के बाल घुंघराले हों, तो उस के मुंह पर उन की प्रशंसा न कीजिये। एक बालिका के बाल घुंघराले थे और लोग उन की तारीफों के पुल बांधा करते थे। उस लड़की की चाची को यह बात मालूम थी। यह सोच कर कि कहीं बालिका के मन में अभिमान जन्म न ले रहा हो, उसने बालिका के बालों में हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे विचार में तो बिना-घुंघराले बाल भी इतने ही सुन्दर होते हैं जितने घुंघराले।" बच्चों की रुचि और विचारों में कोई ऐसा दोष न पैदा होने दीजिए जो आगे चल कर उन के मानसिक-संघर्ष और मन-व्यथा का कारण बन जाए। बच्चों को यही सिखाइये कि अभिमान अनेक लोगों के पतन का कारण बन चुका है।

घमंड कपट के मार्ग पर चलाता है।

कुछ बच्चों को, विशेषकर लडकों को अपनी झूठी वीरता का बड़ा घमंड हो जाता है। वे बिन-किये कारनामों का इस प्रकार वर्णन करते हैं मानो बड़े तीस-मार-खां हों। इस बात में दो दोष होते हैं—एक सच्चाई का अभाव, और दूसरा घमंड की विद्यमानता। ये दोनों दोष बड़पन में भी ज्यों के त्यों रहते हैं। उदाहरण के लिये मछली के शिकारियों और अन्य शिकारियों को ले लीजिये—ऐसी-ऐसी वे पर की उड़ाते हैं कि बस कुछ पूछिये नहीं।

कुछ ही दिन पहले की बात है कि एक महिला अपनी घड़ी मरम्मत के लिये किसी घड़ीसाजके के पास ले गई। उस महिला को मालूम था कि यह आदमी घड़ियों में से अच्छे-अच्छे पुरजे निकाल कर घटिया पुरजे डाल देने में बड़ा चंट है। अतः उस ने कहा, "देखिये मेरी घड़ी का कोई

पुर्जा बदल न जाए।" वह बोला, "श्रीमती जी, आप को मालूम होना चाहिये कि मैं ने ही यह नमूना निकाला है, इन में क्या चीज और कैंची होनी चाहिये मैं जानता हूं।" उस महिला ने जो उन के चेहरे पर दृष्टि डाली, तो उस पर अभिमान झलक रहा था। वह समझ गई कि वे पर की उड़ा रहे हैं और वह भी इस ढिठाई से! प्रत्यक्ष रूप से जान पड़ता था कि यह बात उन्हें बचपन में पड़ी होगी।

पहनने-ओढ़ने का घमंड

क्या हम माता-पिता तथा शिक्षक-शिक्षिका की हैसियत से बच्चों के सामने पहनने-ओढ़ने के मामलों में उचित नमूना रखते हैं? क्या हम पैसे का सदुपयोग जानते हैं या अनावश्यक रूप से सज-धज पर आंख बन्द कर के खर्च करते हैं? हम बच्चों को खर्च के मामलों में स्वार्थ की सीख तो नहीं देते? क्या कुछ चीजें इसलिये खरीदते हैं कि वे दुकान में रखी-रखी हमारा मन लुभाती हैं, या इसलिये खरीदते हैं कि वास्तविक आवश्यकता है? सिर से पांव तक हमारे शरीर पर की प्रत्येक चीज सादा, साधारण, साफ, और चलने वाली है या नहीं? यदि हम इन बातों का ख्याल रखते हुए बच्चों और युवकों के सामने अच्छा नमूना रक्खें, तो उन्हें इन बातों का महत्व ज्ञान हो जाएगा।

बनाव-शृंगार

'मेकअप' की बीमारी आजकल हमारी भारतीय युवतियों को भी लगती जा रही है, बल्कि यूं कहिये कि बहुत फैल गई है। हमें चाहिये कि इन्हें अपने स्वाभाविक सलोने सौन्दर्य को नष्ट करने से रोकें। कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों से उज्ज्वल से वर्ण धीरे-धीरे भद्दा पड़ जाता है और अधिक सांवले मुख पर लीपा-पोती भोंडी लगती है। इस के अतिरिक्त इन प्रसाधनों के कारण शरीर के आकर्षण की ही ओर अधिक ध्यान रहता है, मानसिक तथा व्यक्तित्व के विकास की ओर नहीं।

पारितोषिक वितरण-दिवस

वर्षा हो रही थी। पाठशाला में कई लड़कियां एक स्थान पर इकट्ठी होकर वार्ता में व्यस्त थीं—विषय था—साड़ियां !

सीता बोली, "भई इस बार पारितोषिक-वितरण दिवस पर तो हमें ऐसी-ऐसी साड़ियां पहननी हैं कि वरा सब देखते ही रह जाएं ! लक्ष्मी सफेद और गेंडी की साड़ी बांधेगी, और देवरानी हल्की नीले रंग की रेशमी—एक बात है, देवरानी को पहनने-ओढ़ने का बड़ा सलीका है, जानती है कि किस अवसर पर कौन-सी साड़ी जंचेगी—लीला की साड़ी सफेद रेशमी क्रेप की है !"

"और सरला की ?" सब लड़कियां एक साथ बोल उठीं।

"माताजी और सरला अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाई हैं," सीता ने उत्तर दिया, "सरला चाहती है लाल रेशमी साड़ी, और माता जी का कहना है कि पारितोषिक-वितरण-दिवस पर सफेद साड़ी ही सब से अच्छी होती है ! माता जी के दिनों में लड़कियां बहुत ही सादा कपड़े पहन कर पाठशाला जाया करती थीं।"

"मेरे ख्याल में जब तुम्हारी माता जी को साहित्य-पुरस्कार मिला था, तो उन दिनों साड़ियों की किनारियां बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की होती होंगी।"

"हां, जरा सोचो तो लड़कियो," सीता बोली, "उस अवसर पर उनकी साड़ी साधारण मलमल की थी और ब्लाउज (चोली) सादा सूती कपड़े का। मेरी माताजी कहती हैं कि आज-कल की अपेक्षा उन दिनों लड़कियों को ओढ़ने-पहनने का कहीं अच्छा ढंग आता था। अब तो बस आठों पहर साड़ियों की धुन सवार रहती है !"

"भई, हमें तो आजकल का ही ढंग पसन्द है। बात तो जब है कि पुरस्कार लेने जाऊं, तो हर नजर मेरे कपड़ों पर जम जाए और कुछ देर के लिए एक हलचल सी मच जाए," पूर्णिमा इठलाती हुई बोली !

जैसे मिल ही तो जाएगा पुरस्कार," सीता ने धीरे से कहा, "पहले इस योग्य तो हो . . . ."

वर्षा बन्द हो गई। लड़कियां अपने-अपने घर की राह ली।

जिस समय लड़कियां बाहर खड़ी साड़ियों की बात कर रही थीं, उस समय पास ही वाले कमरे में प्रेमा बैठी पढ़ रही थी। दरवाजा खुला हुआ था। साड़ियों की दीवानी लड़कियों की आवाज उस के कानों में भी पड़ रही थी। उसने पुस्तक पर से नजरें उठाईं और लगी सोचने-साड़ियां ! उसे इस बात का ध्यान नहीं आया था। वह तो अपनी पढ़ाई में व्यस्त थी। उसके मस्तिष्क में भरा था—दर्शन-शास्त्र,

P. V. Subramanyam

साहित्य, निबन्ध और कविता ! उसे यह ध्यान ही न आया कि मुझे भी नई साड़ी चाहिए। उसने रेशम और ऑर्गेंडी का नाम सुना। पर उसके लिए ऐसी साड़ी की प्राप्ति आकाश से तारे तोड़ने से कम न था।

वह अपनी पुस्तकों में मग्न रहती थी, भाग्य को सराहती थी कि शिक्षा-प्राप्ति का अवसर मिला और इस बात को सोच-सोच कर बहुत ही प्रसन्न होती थी कि शीघ्र ही वह दिन आने वाला है कि मैं कहीं नौकरी करके अपने माता-पिता की आर्थिक दशा को सुधार सकूंगी और भाई-बहनों को पढ़ा सकूंगी। वह इस बात को अनुभव करती थी कि मेरे माता-पिता गरीब हैं, और मेरी सब-की-सब सहपाठिनें धनी घरों की हैं। परन्तु उसे इस की कोई चिन्ता न थी, उसने उस ओर कभी ध्यान भी न दिया था। उसकी सहपाठिनों में से कोई ऐसी न थी जो उसे प्यार न करती हो। यहां तक कि अभिमानी देवरानी को भी उससे विशेष लगाव था। प्रेमा प्रायः पढ़ाई-लिखाई में उस की सहायता कर देती और देवरानी उसका एहसान मानती थी। लक्ष्मी भी प्यार से छोटी-छोटी वस्तुएं प्रेमा को देती रहती थी और प्रेमा उन्हें बड़ा संभाल कर रखती थी।

परन्तु आज घर जाते समय उसके मन में सब से बड़ा प्रश्न था साड़ी का ! उस का छोटा सा घर एक तंग गली में था। घर पहुंची तो देखा कि मां के सामने सिलाई की बड़ी सी टोकरी रक्खी है और बेचारी कुछ सी रही है; पास ही रक्खी हुई तिपाई को पकड़-पकड कर उसका नन्हा सा भाई चारों ओर घूम रहा है। बहन को देखकर वह प्रसन्नता से किलकारियां मारने लगा। प्रेमा ने आगे बढ़कर उसे गोद में उठा लिया और खिड़की से लगकर खड़ी हो गई; वह किसी गहरे सोच में थी।

थोड़ी देर के बाद उसने मुड़कर अपनी माता से पूछा, "माताजी, मैं जलसे वाले दिन क्या पहनूंगी ?"

उसकी माता ने ठंडी सांस भरी। बेचारी कई दिन से इसी उधेड़-बुन में थी।

"क्या बताऊं, प्रेमा," वह बोली, मैं तो किसी सादा-सी सस्ती चीज को सोच रही थी। मैं ने पैसा-पैसा करके कुछ जोड़ रक्खा है, परन्तु इतना नहीं है कि कोई बढ़िया कपड़ा खरीदा जा सके। तुम तो जानती ही हो समय टेढ़ा है, पिछले महीने तुम्हारे पिता का वेतन भी कुछ घट गया है।"

"जी, मुझे सब मालूम है," प्रेमा बोली, "पर फिर भी क्या . . . . ?"

"अब क्या बताऊं, प्रेमा," उसकी माता बीच ही में बोल उठीं, "यही कोई सस्ती सी सफेद साड़ी ले लो।"

"सस्ती सी सफेद साड़ी ! माताजी, सफेद साड़ी ?" प्रेमा निराश होकर बोली।

"हां, बेटी," उसकी माता ने कहा, "और हो ही क्या सकता है ?"

"परन्तु," प्रेमा बोली, "और सब लड़कियां तो रेशम, ऑर्गेंडी और क्रेप आदि की साड़ियां पहनेंगी।"

मुझे मालूम है, मेरी बच्ची," उसकी माता ने कांपती हुई आवाज में कहा, "तुम तो जानती ही हो यदि मैं कर सकती, तो अपनी रानी को . . . ."

"कोई बात नहीं, माता जी," प्रेमा ने कहा, "मैं सस्ती सी साड़ी ही ले लूंगी, आप चिन्ता न कीजिए।"

प्रेमा छोटे भाई को जमीन पर बिठा कर अन्दर कोठरी में चली गई। फिर आकर उसने शाम का खाना बनाया। उसके चेहरे पर क्रोध आदि की झलक तक न थी, हां वह चुप अवश्य थी। छोटे-छोटे भाई बहन बार-बार उसकी ओर देखते थे। शायद उन्हें प्रेमा का गुमसुम रहना अच्छा नहीं लग रहा था।

जब सब खा पी चुके और बच्चे सो गए तो प्रेमा खिड़की के पास जा बैठी और बाहर को ताकने लगी। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। वह जितना अधिक सोचती जाती थी, उतनी ही तेज़ी से उसके आंसू निकलते जा रहे थे। रोते-रोते जब जी हल्का हो गया, तो वह आराम से सो गई।

सवेरे को उसने खुशी-खुशी उठकर अपनी माता से पूछा, "कब जाऊं मैं, माता जी, साड़ी खरीदने?"

"तुम्हें मामूली साड़ी खरीदते बहुत बुरा तो नहीं लगेगा, प्रेमा?" उसकी माता ने चिन्तित मन से पूछा।

"जी नहीं माता जी," प्रेमा बोली, "जब मैं पुरस्कार लेने जाऊंगी, तो लोग मेरे कपड़ों को थोड़े ही देखेंगे, मेरे पुरस्कार को देखेंगे।"

"अच्छा तो यह लो पैसे," उसकी माता बोलीं, "मैंने जोड़-जोड़ कर इतने ही रक्खे हैं।"

प्रेमा पैसे हाथ में लेकर सोचने लगी कि मेरी बेचारी मां ने किस-किस कठिनाई से इतने पैसे बचाए होंगे।

प्रेमा की छोटी बहन नैना भी उसके साथ बाजार जाना चाहती थी, इसलिए प्रेमा ने जल्दी-जल्दी उसके बाल बनाए और फिर दोनों बहनें चल दीं।

लड़कियों को बाहर निकलते देखकर प्रेमा की माता सोचने लगीं—"कहीं लड़की अपना जी छोटा न करे, पर नहीं, मेरी प्रेमा ऐसी नहीं, ईश्वर सभों को ऐसी बेटी दे।"

थोड़ी ही देर में दोनों बहनें कपड़े की दुकान पर पहुंच गईं। दुकानदार साड़ी पर साड़ी दिखाने लगा। जरा सी देर में दोनों बहनों के सामने साड़ियों का ढेर लग गया। एक से एक साड़ियां थीं, सस्ती भी, महंगी भी। कभी एक पर नजर जमती, तो कभी दूसरी पर। देखते-देखते प्रेमा को एक हल्के दामों की सुन्दर सी साड़ी पसन्द आ गई। परन्तु नैना ने एक दूसरी साड़ी दिखाते हुए कहा, "दीदी, वह नहीं, यह देखो, यह उससे अधिक सुन्दर है, इसे ले लो।" प्रेमा ने बहन का मन रखने को उसी के दाम पूछे। सौभाग्य से उसके दाम कुछ अधिक न थे। उसके पास उतने पैसे थे, उसने उसे ले लिया। दोनों बहनें बंडल लेकर खुशी-खुशी बाहर निकलीं।

दुकान के सामने रास्ते पर एक बूढ़ा आदमी लाठी टेकता हुआ चला जा रहा था। दौड़ते हुए एक कुली का ऐसा धक्का लगा कि बूढ़े गरीब की लाठी हाथ से छूट कर गिर पड़ी। प्रेमा ने लपक कर लाठी उठा ली और ज्योंही बूढ़े को थमाकर मुड़ी, एक महिला से टकराते-टकराते बची। यह ठाट-बाट वाली महिला अभी-अभी मोटर से उतरी थी।

"नमस्ते प्रेमा," उस धनी महिला के पीछे चलती हुई एक लड़की ने कहा।

"नमस्ते लक्ष्मी," प्रेमा ने उत्तर दिया और जरा हटकर खड़ी हो गई ताकि वह धनी महिला निकल जाए। तभी उसने लक्ष्मी को बोलते सुना। वह कह रही थी,—"माता जी, यही वह लड़की है जिसके विषय में मैं ने आप से कई बार कहा था—हमारी कक्षा में सब से होशियार लड़की है यह।"

"बड़ा प्यारा सा मुखड़ा भी है," श्रीमती वर्मा ने कहा और प्रेमा ने लाज से आंखें नीची कर लीं।

इस के बाद कई दिन तक बड़ा काम रहा। नया ब्लाउज धीरे-धीरे सिल रहा था क्योंकि प्रेमा की माता को घर के धंधों से बहुत कम समय मिलता था, उधर छोटे बच्चे की देख-भाल आवश्यक था। वह चाहती थी कि अच्छा सिल जाए ताकि लड़की का दिल रह जाए।

दूसरे दिन छुट्टी के बाद प्रेमा पाठशाला में अध्ययन-गृह में ठहर गई। उसे साहित्य के कई प्रश्नों के उत्तर तैयार करने थे। थोड़ी देर के बाद उसने देवरानी की आवाज सुनी। वह कह रही थी, "मुझे कोई इन प्रश्नों के उत्तर दुहरवा दे, मुझे तो अपने आप याद करने से याद होते नहीं।"

पर वहां जितनी लड़कियां थीं सभी अपने-अपने काम में लगी हुई थीं, उन्हें इतनी फुरसत कहां कि बैठकर देवरानी के साथ सिर खपातीं और फिर उन्हें बुरा भी लगता था, क्योंकि देवरानी कक्षा में सब से कमजोर लड़की थी, बात जल्दी उसकी समझ में नहीं आती थी। इतने में उसकी नजर प्रेमा पर पड़ गई। वह उसके पास आकर बोली, "बहन प्रेमा, तुम्हीं थोड़ी सहायता कर दो, और तो सब अपने-अपने

काम में लगी हूं, नजर उठा कर भी कोई नहीं देखती, तुम्हारा जरा हर्ज तो अवश्य होगा, पर मैं और किस से कहूं तुम्हीं मेरे आड़े आती हो।"

"हां, हां, देवरानी," प्रेमा ने प्रेमपूर्वक कहा, "बैठो, मैं अभी करवाए देती हूं तुम्हारा काम।" काफी देर तक ये दोनों काम में लगी रहीं, यहां तक कि शाम हो चली। प्रेमा ने कहा,"अच्छा देवरानी, अब तो बहुत देर हो गई, शेष कल करा दूंगी, माता जी मेरी राह देखती होंगी।"

"धन्यवाद प्रेमा," देवरानी ने कहा, "मैं ने कभी इतनी सख्त पढ़ाई नहीं की। पर मेरे पिताजी आने वाले हैं, उन्होंने मुझ से वायदा कर रक्खा है कि यदि तू पढ़ाई में अच्छी रहेगी तो हाथ-घड़ी मिलेगी। मुझे घड़ी का बड़ा ही शौक है, प्रेमा, इसीलिए मैं उनकी शर्त पूरी करने का जी-जान से प्रयत्न कर रही हूं, तुम्हें भी इतना कष्ट दिया।"

"अरे, कष्ट-वष्ट कुछ नहीं, पर तुम्हें घड़ी अवश्य ही मिल जाएगी," प्रेमा ने उसे उत्साहित करते हुए कहा। अब उसे अपना काम याद आया, पर देवरानी को याद करवाते-करवाते बहुत सी बातें उसे याद हो गई थीं इसलिए वह प्रसन्नतापूर्वक चल दी।

जलसे में केवल एक दिन रह गया था, परन्तु अभी तक प्रेमा का ब्लाउज अध सिला पड़ा था। उसका छोटा भाई सारे दिन से बीमार पड़ा था और माता उसकी बड़ी घबराई थीं। उन का मुंह उतरा हुआ था। प्रेमा घर का काम निबटाकर मां से बोली, "लाइये माता जी, मैं ब्लाउज पूरा कर लूं, नैना को देखने की बड़ी पड़ी हुई है और फिर आप इतनी थक गई हैं।"

"पर इस में तो अभी सजावट भी रह गई है, बेटी," प्रेमा की माता बोलीं।

"कोई बात नहीं, माताजी," प्रेमा बोली, "यूंही सादा ही ठीक रहेगा, आप चिन्ता न कीजिए, मैं अब रात को आप को काम थोड़े ही करने दूंगी, जाइए आप लेट जाइए।"

उसकी माता के मुंह पर संतोष और प्रसन्नता झलकने लगी, इससे प्रेमा को भी बड़ा सुख मिला।

शेष सिलाई प्रेमा ने थोड़ी देर में ही पूरी कर ली। नैना ने जब तैयार ब्लाउज देखा, तो खुशी के मारे नाच उठी और बोली, "इसे पहनकर, दीदी, आप बिल्कुल रानी लगेंगी, रानी!"

ये शब्द प्रेमा के लिए पर्याप्त रूप से संतोषजनक सिद्ध हुए। उसका चेहरा खिल उठा।

उसी दिन शामको लक्ष्मी ने पाठशाला में अपनी सहपाठिनों को इकट्ठा किया था। पर प्रेमा को इसकी कानों-कान खबर न हुई। लक्ष्मी ने उपस्थित लड़कियों से कहा, "सुनो लड़कियो, प्रेमा कल जलसे में साधारण वस्त्र पहनकर आएगी। हमारी नौकरानी ने उसकी नई साड़ी देखी है। कहती है कपड़ा तो सस्ता है पर है बहुत सुन्दर। यह तो तुम सब को मालूम ही है कि हम में से कोई भी ऐसी नहीं जिस की पढ़ाई-लिखाई में कुछ-न-कुछ सहायता करने से प्रेमा ने कभी भी मुंह मोड़ा हो।"

"वह बेचारी तो अपना काम छोड़ कर दूसरों का कर देती है," देवरानी बोली।

"कार्यक्रम में उसका एक गीत है," लक्ष्मी फिर बोली, "हम में से कोई एक लड़की अच्छा सा गुलदस्ता लाए और जब प्रेमा कल पाठशाला में आए, तभी उस को भेंट कर दे। इसके अतिरिक्त हम थोड़े-थोड़े पैसे जमा कर लें, और उसके लिए हम सब की ओर से कोई सुन्दर सा उपहार खरीद लिया जाए और

यह भी उसी समय दिया जाए। इस से प्रेमा का उत्साह बढ़ेगा और साथ-ही-साथ हम सब को अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर मिल जाएगा।"

सभी लड़कियों को यह बात पसन्द आई और आन-की-आन में प्रेमा के स्वागत का कार्यक्रम बन गया।

दूसरे दिन जब प्रेमा पाठशाला पहुंची तो वह अपने सादा नए कपड़ों में बहुत ही भली लग रही थी। साड़ी और ब्लाउज के मेल से उसका मुखड़ा दमक उठा था।

प्रेमा ने जो इधर-उधर देखा तो एक-से-एक बढ़िया पहने बालिकाएं चली आ रही थीं। उसका दिल बैठ गया। वह चुपके से पीछे से निकलकर अपनी कक्षा के कमरे में चली गई। परन्तु वहां तो रंग ही और था। लड़कियां उसी की प्रतीक्षा में बैठी थीं। देखते ही लक्ष्मी ने कहा, "आओ-आओ प्रेमा बहन, हम सब तुम्हारी ही राह देख रहे थे।" दमयन्ती उठकर प्रेमा के पास आ खड़ी हुई और सुन्दर ढंग से सुन्दर से कागज में लिपटा हुआ उपहार प्रेमा को देते हुए बोली, "लो बहन प्रेमा, यह एक छोटी सी चीज अपनी सहेलियों की ओर से स्वीकार करो।"

प्रेमा इन सब का मुंह देखती-की-देखती ही रह गई। उसका चेहरा खुशी से और भी दमकने लगा और आंखों में आंसू भर आए। उसने प्रत्येक लड़की का हार्दिक रूप से धन्यवाद किया।

फिर लक्ष्मी गुलदस्ता लेकर प्रेमा के पास पहुंची और बोली, "लाओ बहन, मैं तुम्हारे बालों में फूल लगा दूं—तुम्हारे ही लिए लाई हूं।"

"तुम्हें मेरा इतना ख्याल है?" प्रेमा बोली।

"वाह, क्यों न हो!" लक्ष्मी बोली, "तुम ने हमारे लिए थोड़ा किया है, हम सब तुम्हारे कृतज्ञ हैं।"

इस के बाद ये सब लड़कियां जलसे वाले कमरे में जा बैठीं। कार्य-क्रम आरम्भ हुआ। किसी लड़की ने कविता पढ़ी, किसी ने गीत गाया, किसी ने नाटक खेला और किसी ने नृत्य किया। अन्त में पुरस्कार बांटे गए। तालियां बजने से सारा कमरा गूंज उठा था इस के उपरान्त प्रेमा गीत गाने मंच पर गई। इस समय वह बिल्कुल गुड़िया प्रतीत हो रही थी। उसने गीत कुछ इस प्रकार गाया कि सुनने वाले झूम उठे। सभी ने उस की बहुत प्रशंसा की। चलते समय श्रीमती शर्मा ने उसे लिपटा लिया और पीठ ठोंकी—बड़ी शाबाशी दी।

सभी लड़कियों ने इस बात को अनुभव किया कि ऊपर की टीप-टॉप से नहीं, बल्कि सच्चे प्रेम द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की आंखों में ऊंचा उठ सकता है।

क्या बालक डरता है ?

कुछ भय इस प्रकार के भी होते हैं जो मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक होते हैं और जिन से मनुष्य को बड़ा लाभ पहुंचता है। हम जंगली पशुओं से डरते हैं और उन के पास तक नहीं फटकते। हम छूत के रोगों से डरते हैं और उन से पीड़ित व्यक्तियों से दूर ही रहने का प्रयत्न करते हैं। हम आग से डरते हैं और इसीलिये इस का उपयोग करते समय अत्यन्त सावधान रहते हैं। हम मोटर-गाड़ियों से डरते हैं, हम अनाड़ी ड्राइवरों से भयभीत रहते हैं और इसी कारण मार्ग में बच-बच कर चलते हैं।

पशु-पक्षियों को भी डर लगता है। जमीन पर बैठी हुई उस बुलबुल को तो देखिए। कैसी आहट लेती है। आगे को फुदकती है, खाने योग्य कोई वस्तु मिली, तो चोंच में दबा लेती है। फिर इधर-उधर देखती है कि सब ठीक-ठाक तो है और फुर से उड़ जाती है। बरामदे की छत पर दौड़ती हुई उस गिलहरी पर तो नजर डालिये। कैसी चारों ओर निगाह दौड़ती है कि कोई आस-पास है तो नहीं। यदि तालाब के किनारे पानी पीते-पीते आप को देख पाए, तो क्षण भर में दौड़ कर किसी लम्बे से पेड़ पर चढ़ जाती है। उसे क्या मालूम कि यह मुझे कोई हानि नहीं पहुंचाएंगे। अन्य पक्षियों का भी यही हाल है। उन के हृदय में डर होता है कि कौन जाने पल भर में क्या हो—उन्हें तो इतना ही ज्ञान है कि अपनी रक्षा आवश्यक है।

हितकर भय

ये हितकर भय मनुष्य तथा उस के आस-पास के नन्हे-नन्हे प्राणियों की रक्षा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जन्म से तो केवल दो ही प्रकार के भय बच्चे के मन में होते हैं—एक तो ऊंची और तेज आवाज का डर और दूसरा गिर पड़ने का। मनोविज्ञान के पंडितों का मत है कि अन्य भय बच्चा दूसरों से सीखता है। प्रायः माताएं कहती हैं कि हम ने तो अपने बच्चों के सामने किसी को कोई डरावनी कहानी नहीं सुनाने दी। परन्तु हमें सदा ही यह बात नहीं मालूम होती कि बच्चों ने कहां और क्या कुछ सुना है, न ही सदा इस बात का पता रहता है कि अपने ही घरों में सुनी हुई कहानियों की क्या प्रतिक्रिया उन के छोटे-छोटे मस्तिष्कों में होती है। ज्ञान और अनुभव के अभाव के कारण बच्चे कभी-कभी सुनी-सुनाई बातों का विचित्र ही अर्थ लगा लेते हैं।

एक बच्चा पर से डरता है, तो दूसरा बादल की गर्जन से और तीसरा किसी काल्पनिक पशु से। बहुत से बच्चे किसी-न-किसी विचित्र बात से डरते हैं। कुछ बच्चों को यही डर लगा रहता है कि अंधेरे स्थान में कोई छिपा न बैठा हो। इसी प्रकार के और भी होते हैं।

प्राय: बच्चे को स्वयं यह बात नहीं ज्ञात होती कि मैं अमुक वस्तु से डरने कैसे और क्यों लगा। वह तो केवल इतना ही जानता है कि मुझे डर लगता है। एक बच्ची के विषय में कहा जाता है कि पर को छूने भर से ही वह भयभीत हो उठती थी। उस की माता सोचने लगी कि आखिर इस का कारण क्या है ? उसे याद आया कि एक बार घर में एक अमरीकी महिला आई थी। उस के कोट के कॉलर में रत्नजटित पिन द्वारा कुछ सुन्दर पर लगे हुए थे। इस बच्ची ने जो वे पर देखे तो तुरन्त ही उन्हें पकड़ लिया। परन्तु उसकी कोमल उंगली में पिन की नोक से खरोंच लग गई। बच्ची में इतनी समझ कहां थी कि बात को समझती। वह कैसे जानती कि परों में चोट लगाने वाली कोई चीज नहीं होती—उस के मन में तो परों का डर बैठ गया था। इस दशा में उस की माता को चाहिये था कि उसे किसी मुर्गी-खाने के पास ले जाती और कुछ सुन्दर पर उठा कर चतुराई से बच्ची के मन को उन की ओर आकर्षित करती, फिर जरा देर बाद उन्हें उस के हाथ में थमा देती। इस तरह बच्ची के दिल में बैठा हुआ डर निकल जाता।

समझाना लाभदायक होता है

जिस बच्चे में समझ आ गई हो, उसे बिजली की चमक और बादल की गरज का पारस्परिक सम्बन्ध समझा देना चाहिए। जब बिजली चमके तो उस से कहिए कि सुनते रहो अब कितनी देर में बादल गरजता है। परन्तु आप को सावधान रहना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि आप को भी बादल की गरज और बिजली की कड़क से डर लगता हो। आप का डरना बालक के हृदय में बैठे हुए भय को कैसे निकाल सकता है ? अत: चाहे कुछ ही क्यों न हो आप को जी कड़ा रखना चाहिये। बच्चे से भूल कर भी यह कभी न कहिये कि यह गर्जन ईश्वर का हुंकार है। बहुत सी माताएं अज्ञानवश ऐसा कह बैठती हैं। ऐसी कोई भी बात बालक से न कहिये जिस से वह ईश्वर के आह्वान से डरने लगे। उस के मन में ईश्वर के सम्बन्ध में कोई गलत बात न पैदा कीजिये।

इस बात का ध्यान रखिये कि बच्चे परस्पर एक-दूसरे को डराने न पायें। यदि आरम्भ से ही उन्हें इस बात से रोका जाए, तो वे कभी एक-दूसरे को नहीं डराएंगे। नाड़ी-रोग इसी प्रकार पैदा होते हैं फिर जीवन भर पीछा नहीं छोड़ते।

एक छोटा सा बच्चा आंगन में बैठा खेल रहा था। एक लड़के ने मकान की दूसरी मंजिल के कमरे की खिड़की में से एक ईंट नीचे गिरा दी। चाहता था कि ईंट खेलते हुए बच्चे के पास जा गिरे और बच्चा मारे डर के घबरा सा जाए। परन्तु दुर्भाग्यवश ईंट जा गिरी बच्चे के सिर पर ! खोपड़ी चकना-चूर हो गई !! उस लड़के के इस असावधानी के कार्य के प्रति कितनी घृणा पैदा होती है, परन्तु इस लड़के का शिक्षण उचित प्रकार से हो सकता था और इस दशा में वह कदापि ऐसा घृणास्पद कार्य न करता।

P. K. Patel

भी उन के बड़े भाई की करतूत से हुआ यह कि एक दिन इन के भाई ने एक बड़ा सा आलू ले कर चाकू से अत्यन्त भयंकर आकृति का एक जीव बनाया और उस की आंखों में फास्फोरस लगा दिया जिस से वे अंधेरे में चमकने लगीं। इस के बाद अलमारी खोल कर उस के एक खाने के एक कोने में रख दिया और छोटे भाई को उस की ओर धकेलते हुए कहा कि यदि यह तुझे अकेला पकड़ पाया, तो बस खा ही तो जाएगा।

भय यंत्रणा है

जिस प्रकार के भयों से बच्चे दुःखित हो उठें, उन के विषय में हमें और अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिये—हम ने बहुत सोच-समझ कर यह "दुःखित" शब्द प्रयुक्त किया है। बात यह है कि बहुत से लोग ऐसे भयों को कुछ समझते ही नहीं और यह कह कर बच्चों की हंसी उड़ाते हैं कि कुछ है भी या वैसे ही एक तितम्बा बना रक्खा है। हम में से बहुत से लोग अपने को बच्चों के स्थान पर रख कर नहीं सोचते। हम प्रायः इस बात का पूर्ण रूप से अनुमान भी नहीं लगा पाते कि जब बच्चे को डर लगता है, तो वह कितना अधिक दुःखित हो उठता है। अतः यह निरी निर्दयता है कि उस की कुछ सहायता करने के बजाए उस को उस के हाल पर छोड़ दिया जाए।

उदाहरण के लिये एक सच्ची घटना ले लीजिये। एक पांच-वर्षीय बालक को उस की मां रात को सुलाने के लिये बिस्तर में लिटाती है, और फिर बत्ती बुझा कर उसे अकेला छोड़ देती है। परन्तु वह कमरे से निकलने भी नहीं पाती कि बालक घबड़ा उठता है और अंधेरे कमरे में से निकल भागने का प्रयत्न करता है। उसे अंधेरे में कोई "पकड़ने वाला" दिखाई देता है। मां बच्चे की आवाज सुन कर बत्ती जलाती है और चारों ओर दिखा कर कहती है कि किसी की क्या मजाल जो यहां आ भी जाए और तुम्हें हाथ भी लगा जाए। उसे फिर लिटा देती है और कमरे की बत्ती बुझा कर चलने लगती है, परन्तु बच्चा चीख कर रोता है और दौड़ कर मां को लिपट जाता है। मां को क्रोध आ जाता है और वह उस के एक-दो हाथ जड़ देती है और जबरदस्ती एक बार फिर बिस्तर में लिटा देती है। बालक बुरी तरह छटपटाता है और किसी-न-किसी तरह लेटा रहता है।

जरा इस बालक की अन्तर-भावनाओं की कल्पना तो कीजिये। क्या आप को इस का अनुमान हो सकता है कि इस बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर इस व्यवहार का कितना दुष्प्रभाव हुआ होगा। वह रोते-रोते थक कर सो गया। दूसरे दिन जब वह उठा तो लगी मां व्याख्यान देने—"तुम्हें शर्म नहीं आती, इस प्रकार चीखते और बिस्तर से उठ कर भागते। इतने बड़े लड़के को कहीं डर लगता है, छि-छि कितनी गन्दी बात है।"

"पर माताजी," बालक ने आग्रहपूर्वक कहा, "मैं ने तो देखा था।"

"क्या देखा था?" मां ने पूछा।

"बड़ा सा काला-काला था," बालक ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

"तुम्हारा सिर था। वहां धरा था कुछ," मां ने चिढ़ कर कहा।

जरा अच्छी तरह कमरे में चारों ओर देख लो-कहीं कुछ है ? अब उसे बिस्तर पर ले जाइये और पूछिये कि आखिर 'वह बड़ा सा' कैसा दिखाई देता है, जरा बताओ तो। उस के पास खड़ी हो जाइये, सिरहाने की ओर चली जाइये और उस परछाईं को देखने की कोशिश कीजिये जो बालक को दिखाई दे रही हो। हो सकता है कि चांद की रोशनी या किसी अन्य रोशनी के कारण हवा से हिलती हुई बाहर किसी पेड़ की शाखाएं हों जिन की परछाईं अन्दर दीवार पर पड रही हो। फिर इस तरह बत्ती के सामने खडी हो जाइये कि आप की परछाईं दीवार पर पड़े। बालक को भी इस प्रकार खड़ा कीजिये ताकि वह आप अपनी परछाईं देख सके और फिर उसके खड़े होने की स्थिति बदलवाइये जिस से दीवार पर पड़ती हुई परछाईं विभिन्न आकार ग्रहण कर सके। यह खेल-का-खेल हो जाएगा और बच्चे की समझ में वास्तविक बात भी आ जाएगी। यह बडी ही बढ़िया युक्ति है। दूसरे दिन शाम को उसे बाहर सैर को कहीं ऐसी जगह ले जाइए जहां पेड़ हों। यहां पेड़ों के नीचे उस का ध्यान उस बात की ओर आकर्षित कीजिए जो दिन में नहीं होती। इस के बाद घर लौट कर उस से कहिये कि अमुक कमरे की बत्ती जला आए और रसोई घर की बत्ती जला कर अमुक वस्तु ले आए।

कहानियों या सोते समय खेले जाने वाले खेलों में बच्चे का मन लगा कर इस प्रकार का डर दूर किया जा सकता है। सोने से पहले बालक का मन प्रसन्न होना चाहिये।

परन्तु इस समस्या के समाधान में सब से बड़ी सहायता मिलती है ईश्वर की ओर से। अतः बालक-बालिकाओं को ईश्वर का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराने में कोई कसर उठा न रखिये। बहुत से बच्चों को ईश्वर के विषय में ऊट-पटांग बातें बता दी जाती हैं और इस का फल यह होता है कि बच्चे सदा यही सोचते हैं कि ईश्वर तो बस इसी ताक में रहता है कि कब बच्चों से कोई गलती हो और कब दण्ड दूं।

"क्योंकि परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम रक्खा कि उस ने अपना एकलौता पुत्र दे दिया कि जो कोई उस पर विश्वास करे वह नष्ट न हो, पर अनन्त जीवन पाए।" यदि हम इस का थोड़ा-बहुत अर्थ भी समझ सकें, तो हम सिखा सकते हैं कि ईश्वर प्रत्येक बच्चे को कितना अधिक प्यार करता है और उसका प्यार कभी घटता नहीं क्योंकि उस का कहना है—"मैं ने तुझे अनंत प्रेम से प्यार किया है।" इन बातों के समझने में हमें बच्चों की भरसक सहायता करनी चाहिये। ईश्वर हमें प्यार करता है, ईश्वर हमारी रक्षा करता है और ईश्वर हमें प्रत्येक हानि से बचाता है। "छोटे बच्चों को मेरे पास आने दो, और न रोको, क्योंकि परमेश्वर का राज्य ऐसों का ही है।"

ईश्वर बच्चों को हर प्रकार से संभालता है। "अपनी सारी चिन्ता उसी पर डालो क्योंकि वह तुम्हारी रखवाली करता है"—जैसे आश्वासनों द्वारा ही हम बच्चों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं और इस प्रकार उन्हें यह विश्वास हो सकता है कि जो बच्चे ईश्वर पर विश्वास रखते हैं उन पर कभी भी कोई आंच नहीं आती।

भय के कई स्रोत हैं और आश्चर्य की बात है कि बहुत से माता-पिता इन से अनभिज्ञ रहते हैं। पढ़े-लिखे बच्चों के लिये सब से बड़ा स्रोत आजकल है—"कॉमिक्स" और दूसरा है सनसनी-पैदा करने वाली पत्रिकाएं। बहुत साल हुए जब "कॉमिक्स" पहले-पहल निकले थे, तो उन में हास्य या

बच्चे भी निश्चय कर लेते हैं कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, माता जी और विशेषकर पिता जी से तो कुछ न कहना भी भला है। परन्तु डर का सामना कर के उसे दूर करना इससे कहीं अच्छा है कि उसे दबाने का असफल प्रयत्न किया जाए। अत. अपने बच्चों को प्रोत्साहन दीजिए कि वे अपनी समस्याओं पर आप से स्वच्छंदतापूर्वक बात-चीत कर सकें।

अंधेरे का डर

दक्षिणी अफ्रिका के बीचों-बीच घने जंगल में एक गांव था। उस में सेगो नामक एक लड़का रहता था। एक समय वह अंधेरे से बहुत डरता था और जिन लड़कों के साथ वह खेलता था, उन सब को भी अंधेरे से बड़ा डर लगता था। शाम होते ही सारे लड़के हड़बड़ा कर अपने-अपने घर की ओर भागने लगते और सेगो उन सब में आगे-आगे होता।

एक दिन तीसरे पहर सब लड़के खेल रहे थे। एक लड़का हाथ पीछे कर के झुक आता था और दूसरे उसकी पीठ पर से कूद जाते थे। लड़के खेल में मग्न थे। बड़ा आनन्द आ रहा था। सहसा उनका ध्यान बढ़ते हुए अंधेरे की ओर चला गया।"

"अरे देखो, कितना अंधेरा हो चला," सेगो चिल्ला उठा, "चलो भाग चलें।

"सेगो," छोटा-सा ज्वीली अपने इधर-उधर दृष्टि डालते हुए, डरी आवाज में बोला, "कहीं आज वे हमें पकड़ न लें . . . . ?"

बेचारा बच्चा! उसे पूर्ण विश्वास था कि जंगल में बौने घात लगाए बैठे रहते हैं और छोटे-छोटे बच्चों को पकड़ लेते हैं। सेगो ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस ज्वीली का हाथ पकड़ कर घर की ओर भागने लगा। कुछ देर के बाद वे उस अंधेरे पर पहुंचे जहां एक तालाब था। उन्हें पक्का विश्वास था कि इस स्थान पर तिकोलेशे नाम की राक्षसी रहती है।

"अब बिलकुल चुप-चाप, पर जरा जल्दी-जल्दी चले चलो," सेगो ने दबे पांव चलते हुए कहा, "कहीं ऐसा न हो कि 'वह' इस काले-काले पानी में से हाथ निकालकर हमें अन्दर खींच ले!"

जैसे-तैसे उन्होंने रास्ता तै किया। घर पहुंच कर उन्हें बड़ी ही खुशी हुई कि सुरक्षित आ गए। छोटे से दरवाजे में से वे अंदर घुस गए और जमीन पर बिछी हुई चटाई पर पल्थी मार कर बैठ गए। उन की बड़ी बहन ने उन्हें खाना दिया। दोनों भाई उंगलियां चाट-चाट कर खाना खाने लगे। उनका डर जा चुका था, वे सब कुछ भूल गए थे। बातें करते-करते वे इतने जोर से हंसे कि एक कोने में अंडों पर बैठी हुई मुर्गी भी जाग उठी और गाय का छोटा-सा बछड़ा अपना सिर उठा कर डरी हुई आवाज में डकराने लगा।

इतने ही में "टक टक" का शब्द सुनाई दिया। सभी लोग सन्न हो गए। आग पर भुनते हुए भुट्टों का किसी को ध्यान तक न रहा वे जलकर खाक हो गए, पर कोई टस-से-मस न हुआ।

संगो का दिल इतने जोर-जोर से धड़कने लगा कि उसे यह डर हो गया कि वहीं "टक-टक" करनेवाला सुन न ले। परन्तु था कोई भी नहीं बार हवा चल रही थी उसी के कारण यह शब्द सुनाई दे रहा थी। एक-एक करके सारे बच्चे जमीन पर लगे हुए अपने-अपने विस्तर में चुप-चाप जा दुबके और कुछ देर बाद सो गए। दूसरे दिन सवेरे जब उठे तो फिर उन में वही साहस आ गया। अपनी झोंपड़ियों के चारों ओर दौड़ने लगे। संगो और ज्वीली फिर अपने रोज की जगह खेलने पहुंच गए। सारे दिन खेलते रहे। वे खेलते-खेलते अधिक दूर निकल गए। वे एक नई-नई स्थापित पाठशाला के पास जा पहुंचे। उन्होंने इस विषय में सुना तो था, परन्तु इससे पहले कभी इसे देखा न था। उन्हें वहां प्रत्येक वस्तु विचित्र लग रही थी।

संगो ने कहा कि चलो चलकर देखें यहां क्या हो रहा है। वे चुपचाप आगे बढ़े। पास पहुंचने पर उन्हें दीवारों में बड़े-बड़े छेद-से दिखाई दिए। वे उनमें से अन्दर झांकते जाते थे। उन्हें क्या मालूम था कि इन छेदों को खिड़की कहते हैं। उन्होंने अपने छोटे घरों में ऐसी चीज कभी न देखी थी। अन्दर उन्हीं के जैसे लड़के बैठे थे, परन्तु थे साफ-सुथरे और उन के शरीर पर कुछ वस्त्र भी थे। वे कागज के टुकड़ों पर बने हुए विचित्र प्रकार के चिन्हों को देख रहे थे। उन में से एक-एक उठता था और कुछ बोलता था। संगो और ज्वीली को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके हाथ में का कागज का टुकड़ा उससे कुछ बुलवा रहा हो। यह तो बड़ी ही विचित्र बात थी। आगे-आगे संगो और पीछे पीछे ज्वीली चला। वे घूम कर सब से बड़े छेद अर्थात् दरवाजे के सामने आ गए और एक गोरे आदमी के इशारे से बुलाने पर अन्दर चले गए।

संगो ने जिज्ञासापूर्वक उस आदमी से पूछा, "क्या ये चिन्ह इन लड़कों से कुछ बुलवाते हैं ?"

"इन चिन्हों से शब्द बनते हैं," अध्यापक ने समझाते हुए कहा, "और इस क्रिया को 'पढ़ना' कहते हैं।"

"क्या हम भी सीख सकते हैं ?" संगो ने पूछा।

अध्यापक ने सिर हिला कर स्वीकृति प्रकट की।

"तो ज्वीली," संगो अपने छोटे भाई से बोला , "थोड़ी देर यहां ठहर जाएं।"

वे सब के साथ बैठ गए। उन्हें क्या मालूम था कि उनका विद्यार्थी-जीवन आरम्भ हो गया है।

दूसरे दिन से दोनों भाई प्रतिदिन सवेरे ही अपनी झोंपड़ी से पाठशाला पहुंच जाते। संगो को वहां धार्मिक भजन गाने और सुनने में बड़ा ही आनन्द आता था। वह बड़े चाव से कहानियां सुनता था। इन कहानियों का विषय होता था ईश्वर का प्रेम मनुष्य के प्रति। उसने तो अब तक यही सुन रखा था कि दिखाई-न-देने-वाले बौने और तिकोलोशे बच्चों को पकड़ने की घात में रहते हैं, परन्तु अब अध्यापक ने बताया कि तिकोलोशे और दिखाई-देने-वाले बौने जैसी कोई चीज नहीं है। उन्होंने यह भी सिखाया कि बच्चों के साथ सदा ईश्वर बच्चों को प्यार करता है, और उनकी रक्षा करता है। होते-होते संगो को पूर्ण विश्वास हो गया कि ईश्वर मुझ पर प्रेम रखता और अंधेरा हो जाने पर उस तालाब के

दांत-भींच कर दौड़ने लगा। उसे डर था कि कहीं फिर हिम्मत न हार बैठूं। धीरे-धीरे चांद निकल रहा था। उसकी किरणों से पेड़ों के नीचे विचित्र आकृतियां बनने लगीं। उसे फिर डर लगने लगा।

क्षण भर में उस के मन में यह बात आई कि सभी जगह तो ईश्वर विद्यमान है, वही मेरी रक्षा करेगा। वह बढ़ता जाता था और कभी-कभी डर कम करने को कोई गाना गाने लगता था। उसे बत्तियां दिखाई दीं। अस्पताल आ गया था।

डाक्टर सहर्ष उसके साथ हो लिया। बच्ची को देखकर उसने इलाज करना आरम्भ कर दिया। सेंगो को पूर्ण विश्वास था कि थोड़े दिन में मेरी बहन अच्छी हो जायगी, तभी लोगों को ज्ञान होगा कि ईश्वर बच्चों को प्यार करता है।

"तो कल रात तुम में इतनी हिम्मत कहां से आ गई कि अकेले दौड़े चले गए और उस आदमी को बुला लाए?" लम्बा और छ्बीली बोले, "तुम्हें तो अंधेरे में बहुत डर लगता है, रात नहीं डरे?"

"हां, पहले पहले तो मुझे बहुत डर लगा," सेंगो ने कहा, "परन्तु मैं ईश्वर का नाम जपता हुआ आगे बढ़ता गया। मेरे मन में केवल एक बात जमी हुई थी और वह यह कि ईश्वर बच्चों को प्यार करता है। फिर मुझे डर-वर कुछ नहीं लगा!"

दांत-भींच कर दौड़ने लगा। उसे डर था कि कहीं फिर हिम्मत न हार बैठूं। धीरे-धीरे चांद निकल रहा था। उसकी किरणों से पेड़ों के नीचे विचित्र आकृतियां बनने लगीं। उसे फिर डर लगने लगा।

क्षण-भर में उस के मन में यह बात आई कि सभी जगह तो ईश्वर विद्यमान है, वही मेरी रक्षा करेगा। वह बढ़ता जाता था और कभी-कभी डर कम करने को कोई गाना गाने लगता था। उसे बत्तियां दिखाई दीं। अस्पताल आ गया था!

डाक्टर सहर्ष उसके साथ हो लिया। बच्ची को देखकर उसने इलाज करना आरम्भ कर दिया। सेंगो को पूर्ण विश्वास था कि थोड़े दिन में मेरी बहन अच्छी हो जायगी, तभी लोगों को ज्ञान होगा कि ईश्वर बच्चों को प्यार करता है।

"तो कल रात तुम में इतनी हिम्मत कहां से आ गई कि अकेले दौड़े चले गए और उस आदमी को बुला लाए?" सम्बा और ज्वीली बोले, "तुम्हें तो अंधेरे में बहुत डर लगता है, रात नहीं डरे?"

"हां, पहले पहले तो मुझे बहुत डर लगा," सेंगो ने कहा, "परन्तु मैं ईश्वर का नाम जपता हुआ आगे बढ़ता गया। मेरे मन में केवल एक बात जमी हुई थी और वह यह कि ईश्वर बच्चों को प्यार करता है। फिर मुझे डर-वर कुछ नहीं लगा!"

रोने-झींकने-वाला बच्चा

इस से पहले कि बच्चे के रोने-झींकने का कोई इलाज ढूंढा जाए, हमें चाहिये कि इस का कारण मालूम कर लें। आखिर बच्चा रोता-झींकता है क्यों? कोई-न-कोई कारण तो अवश्य ही होगा। अब यह दूसरी बात है कि असाधारण हो या साधारण। हो सकता है कि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक न हो, या यह भी सम्भव है कि उसे रोने-झींकने की बान पड़ गई हो ऐसा भी मुमकिन है कि किसी दूसरे रोने-झींकने वाले बच्चे के संपर्क में आकर उस ने यह बात सीख ली हो, या फिर यह भी हो सकता है कि घर ही में किसी बड़े चिड़चिड़े स्वभाव का दुष्प्रभाव हो। ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ बच्चे पाठशाला में तो रोते-झींकते हैं, परन्तु घर पर नहीं, और यदि घर पर रोते-झींकते हैं, तो पाठशाला में शांत रहते हैं।

कभी-कभी बच्चों की यह इच्छा भी कि बस दिन-रात लोग हमारा ही ध्यान रक्खें, उन के रोने-झींकने का कारण बन जाती है। जिन बच्चों को बहुत ही लाड़-प्यार से रक्खा जाता है, जिन की जरा-जरा सी बात पूरी कर दी जाती है जिन की देख-रेख में घर-का-घर लगा रहता है, वे आसानी से इस "सम्मान" को छोड़ना नहीं चाहते। कुछ बच्चे दूसरों के लाड़-प्यार पर ही जीते हैं और यदि यह लाड़-प्यार उन्हें नहीं मिलता और वे अन्य रीतियों से भी अपना काम नहीं बना पाते, तो रोने-झींकने लगते हैं। कभी-कभी हठ द्वारा भी बच्चे दूसरों को अपनी ओर और अपनी आवश्यकताओं की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं।

कभी-कभी बच्चा रात को देर-देर तक जागता रहता है और उसे कोई कुछ नहीं कहता। इस का फल यह होता है कि जितनी देर उसे सोना चाहिये, वह उतनी देर नहीं सोता। हो सकता है कि उसे चाय, कॉफी, या गाढ़ी-गाढ़ी कोको पिला दी जाती हो? परन्तु बच्चों को इस प्रकार के उत्तेजक पेयों से बचा कर रखना चाहिये। अधिक मिठाई, चिकना और मसालेदार या अध-पका भोजन भी बच्चे में रोने-झींकने की आदत पैदा कर देता है। अधिक ढीले-ढाले या अधिक तंग वस्त्र आरामदेह नहीं होते, इस लिये भी बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है।

देखिये कोई शारीरिक दोष तो नहीं?

अतः सब से पहली बात यही है कि बच्चे के रोने-झींकने का कारण मालूम करके उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाये। सर्वप्रथम इस बात की ओर ध्यान दीजिए कि इस की देख-रेख ऐसी है भी

Devidas Kasbekar

O.C.F.—10 (Hindi)

जिस से वह स्वस्थ तथा प्रसन्न रहे, चाय, कहवा उत्तेजनाजनक पेय बच्चे को कभी भी न दीजिये। ऐसी व्यवस्था कीजिए कि विभिन्न खाद्य पदार्थों द्वारा उस के शरीर में विभिन्न पोषक तत्व पहुंचें। वैसे तो धूप और खुली हवा में व्यायाम करना सभी बच्चों के लिये लाभदायक होता है, परन्तु उकताने, उखड़ी और रोने-झींकने वाले बच्चे के लिये विशेष रूप से हितकर सिद्ध होता है।

यह बात भी कभी न भूलिये कि बच्चे के अच्छे और स्वस्थ रहने के लिए पर्याप्त निद्रा आवश्यक है। बढ़ती हुई अवस्था के साथ-साथ आवश्यकतानुसार बच्चे को दस से पन्द्रह घंटे नींद लेनी चाहिये। कुछ माता-पिता इस ओर बिल्कुल ध्यान ही नहीं देते और फल यह होता है कि बच्चे चिड़चिड़े और बीमार-बीमार से रहते हैं।

हो सकता है कि बच्चे को डाक्टर को दिखाने की आवश्यकता हो, शायद कोई शारीरिक विकार हो जिस का पता माता-पिता को न लग सका हो। परन्तु सामान्य रूप से यदि माता पिता बच्चे के रोने-झींकने का कारण मालूम करने में पूरी कोशिश करें, तो कोई वजह नहीं कि मालूम न हो जाए।

बच्चे के रोने-झींकने को निष्फल कर दीजिये

यदि बच्चा इतना बड़ा हो कि मुंह से कोई चीज मांग सके, तो उस के रोने-झींकने पर उसे कुछ भी न दीजिए। यदि रोने-झींकने से उसे इच्छित वस्तु न मिली, और उस के समस्त प्रयत्न निष्फल रहे, तो कदाचित् वह यह बुरी आदत छोड़ दे। हां, इतना जरूर है कि एक-दो बार में ही यह आदत नहीं छूटेगी, छूटते-छूटते छूटेगी।

क्या वह सोचता है कि कैसी मुसीबत आ गई? सम्भव है सोचता हो। अच्छा होगा यदि उसे किसी ऐसे बच्चे के पास ले जाया जाए जो उस से कहीं अधिक बुरी दशा में हो। अपनी दशा की दूसरे बच्चे की दशा से तुलना करने पर उसे अपने विभिन्न सुखों का अनुमान हो जाएगा। कभी-कभी उसे दूसरों की सेवा करने का अवसर भी दीजिये। इस प्रकार उस का ध्यान अपनी ओर न रहेगा, वह अपने विषय में अधिक न सोच सकेगा। वह दूसरों की ओर आकर्षित हो जाएगा। दूसरों की सेवा करने से चित्त प्रसन्न रहता है।

बच्चे से कोई गाना गवाइये या मीठी बातचीत कीजिए। जितना सुन्दर व प्रसन्नतापूर्ण वातावरण होगा, उतना बच्चा रोने-झींकने की ओर ध्यान कम देगा। वह अपनी ओर ध्यान न देगा। उसे ऐसी कहानियां सुनाइए जिन से उस का मन बहले, और वह अपने विषय में अधिक न सोच सके। कहानियां हों सुखी बच्चों की और कभी-कभी बीमार और दुःखी बच्चों की भी।

रोने झींकने की आदत छुड़ाने के उपाय

बच्चों की प्रकृति और रुचियों की भिन्नता ही तो होती है। बच्चा भी वैसा होता है जैसा उसका वातावरण है। इसलिये रोने-झींकने वाले बच्चे को ऐसे बच्चों के साथ खेलने-कूदने का अवसर दीजिए

जो रोते-झींकते न हों। यदि दूसरे बच्चे चिढाएं और छेड़ें, तो आप अपने बच्चे के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें बुरा-भला न कहिये। बहुत सम्भव है कि वे उस के साथ खेलें ही न। इस दशा में उसे समझाइए कि देख, रोने-झींकने वाले बच्चे के साथ कोई खेलता भी नहीं, सभी को हंसता हुआ बच्चा अच्छा लगता है, इसलिये तुम्हें चाहिए स्वयं प्रसन्न रह कर दूसरों को प्रसन्न रक्खो। छः सात वर्ष के बच्चे रोने-झींकने वाले बच्चे से दूर ही रहते हैं और प्रायः उसे यह कह-कह कर चिढाते हैं कि रोतडा है, रोतड़ा कहीं का। अधिकांश बच्चे बहादुर को पसन्द करते हैं। इसलिए रोने-झींकने वाले बच्चे को बहादुर बनाने का प्रयत्न कीजिए।

माता-पिता को स्वयं इस बात का बडा ध्यान रखना चाहिए कि कहीं स्वयं रोने-झींकने का भद्दा नमूना बच्चे के सामने न रखें। जो माता-पिता इस बात का ख्याल रखते हैं, उन के बच्चे रोते झींकते नहीं।

रोना-झींकना बुरी आदत है और उसे अन्य बुरी आदतों की भांति छुड़ाई जा सकती है और इस की उलट अच्छी आदत बनाई जा सकती है।

रमेश मामाने अपना इरादा क्यों बदला

सात वर्ष का राजू अपने घर के पीछे खुले स्थान में कुत्ते के पिल्ले के साथ खेलने में मग्न था। इतने ही में उस की माता ने उसे पुकारा—"र-आ-जू ओ, रा-जू।" बच्चा कुत्ते के पिल्ले को घसीटता, मरे-मरे उठाता और बड़बड़ाता हुआ चला—"न-जाने-मुझे क्यों-बार-बार-बुलाती हैं—सारा-खेल-बिगड़-जाता है। आ, मोती चल।" पिल्ला जल्दी जल्दी चलने लगा। फिर सिर आगे को कर के वह दौड़ने लगा और बार-बार पीछे मुड़-मुड़ कर राजू को देखने लगा, मानो कहता हो—"जल्दी-जल्दी कदम उठाओ राजू!" परन्तु राजू वैसे ही झींकता हुआ घिसटता हुआ चलता रहा। अन्त में वह घर के सामने पहुंच ही गया। उसकी माता दरवाजे पर खड़ी थीं। उन्होंने कहा, "राजू कदम उठा कर नहीं चला गया? जरा सी दूर से आने में इतनी देर लगा दी। मैं कब से पुकार रही हूं।"

"हम-से-जल्दी-जल्दी-नहीं-चला-जाता," राजू ने झींकते हुए कहा।

देखो तो आज कितना काम फैला पड़ा है। और आज ही घर में घी भी नहीं रहा," उसकी माता ने कहा, "जरा दौड़कर कोने वाली दुकान से एक एक सेर घी ले आओ, यह लो पैसे, और यह रहा डब्बा; और हां, जरा जल्दी आना, मुझे बहुत काम करना है।"

"मुझ-से-धूप-में-नहीं-चला-जाता," राजू ने झींकते हुए कहा।

"अच्छा तो, तुम बब्ले को देखते रहना," उस की माता निराश होकर बोलीं, "मैं ही घी ले आती हूं, देखो तुम बब्ले के साथ खेलते रहना उसका ध्यान रखना, मैं अभी आई।"

थोड़ी ही देर में उस की माता घर से जरा दूर ही थीं कि उन के कान में रोने-चीखने की आवाज पड़ी। वह सहम गई। वह दौड़ पड़ीं और बौखला कर पीछे के दरवाजे से घर में घुस गईं। सामनेके दरवाजे से राजू अन्दर आया। बब्ला रो-रोकर अपनी जान खो रहा थी। उसकी चीखों से मां का कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता था। नन्हीं सी जान के दोनों हाथों की उंगलियां झुलस गई थीं। मां ने जल्दी से नारियल का तेल लगा दिया कि ठंडक पहुंचे।

"राजू," मां ने भर्राए हुए गले से पूछा, "तुम कहां चले गए थे? मैं तुम से बब्ले को देखते रहने को कह गई थी, न! तुम ने यह क्या किया? कहां थे तुम?"

"बाहर-ही-तो-था," राजू झींका।

"पर मैं तो तुम्हें अच्छी तरह जता गई थी कि बब्ले को देखते रहना। मैंने तो तुम पर भरोसा किया था, और तुम ने यह क्या किया है?"

"मुझे-बच्चे-अच्-छे-नहीं-लगते," राजू झींकने लगा।

"पर तुम अपने आप को तो बड़े अच्छे लगते हो, है न? बस अपने मन की करते हो और चाहते हो कि दूसरे भी तुम्हारे ही मन की करें। बड़े स्वार्थी हो! बड़े निर्दय हो! मैं ने ही गलती की जो अपने आप चली गई, घी तुम्हीं से मंगाकर छोड़ती तो ठीक होता। यदि बड़े होकर कुछ बनना चाहते हो, तो अपनी मर्जी करनी छोड़ दो, और ठीक काम करना सीखो, और हां, यह मुंह बनाना और हर बात में झींकना भी तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। यह आदत अच्छी नहीं। मैं तुम्हारे रमेश मामा और तुम्हारे लिए बेसन के लड्डू बनाने जा रही थी, उन्हीं के लिए घी चाहिए था, पर तुम ने सारा काम ही बिगाड़ कर रख दिया।"

"रमेश मामा?" राजू ने उत्सुक होकर पूछा, "पर वह तो यहां है नहीं?"

"वह आते ही होंगे," मां ने उत्तर दिया।

"रमेश मामा आ रहे हैं? मेरे रमेश मामा?" राजू खुशी से चीख उठा।

"हां, आध घंटे में आ जाएंगे; पर बब्ले की उंगलियां झुलस गई, इसे संभालूं, या लड्डू बनाऊं?" उसकी माता ने निराशपूर्ण स्वर में कहा, "अब तुम दोनों ही को लड्डू नहीं मिलेंगे।"

किसी-न-किसी तरह उसकी मां ने बच्चेको गोद में लिए-ही-लिए खाना बनाया। राजू मन-ही-मन दुःखी हो रहा था। वह चाह रहा था कि किसी तरह बब्ला रमेश मामा के पहुंचने से पहले ही सो जाए तो अच्छा हो, ताकि आते ही उन्हें यह पता न चले कि बब्ले की उंगलियां झुलस गई हैं। उसे यह सोच कर डर लग रहा था कि इसका कारण मैं ही हूं, मैं ने ही माता जी का कहना नहीं माना, रमेश मामा क्या कहेंगे।

शाम हो चली थी। रमेश मामा आ चुके थे। भोजन का समय होने वाला था। मां ने राजू को बुलाकर कहा—"लो राजू, ये पैसे, दौड़कर सिंधी हलवाई के यहां से पाव भर बरफी तो ले आओ।"

"मैं—नहीं—जाता," राजू ने झींकते हुए कहा, "मैं—रमेश मामा के पास रहूंगा।"

"देखो राजू," उसकी माता जरा कड़ी होकर बोलीं, "इस समय तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा, आगे कुछ और न बोलना, सीधे चले जाओ।

राजू को मालूम था कि मेरी माता के इस आदेश का क्या अर्थ है, इसलिए वह कान दबाकर सीधा चला गया।

खाना खाते समय राजू ठीक रहा, रोया झींका नहीं। मां ने उसे और एक घंटे तक रमेश मामा के पास बैठा रहने दिया, परन्तु जब नौ बजे और उससे सो जाने को कहा, तो वह बोला, "मैं—अ-भी—न-हीं—सोता।" पर जब मां ने आंखें दिखाईं तो वह जाकर बिस्तर पर लेट गया।

दूसरे दिन सवेरे जब उठा तो देर तक जागते रहने का दुष्प्रभाव उसके चेहरे पर साफ दिखाई दे रहा था। सारे दिन यही हुआ कि जो बात भी उसके मन की सी न होती, उसी पर वह झींकने लगता।

"पर माताजी," राजू बोला, "मैं झींकूं-वींकूंगा नहीं, मामाजी, जो आप कहेंगे, सो करूंगा।"

"जो मैं कहूंगा सो करोगे! न भई, तुम भूल जाओगे, जब तुम घर ही पर भूल जाते हो, तो बाहर क्या होगा? खैर मैं फिर आऊंगा, आशा है कि उस समय तक तुम यह रोने-झींकने और अवज्ञा की गन्दी आदत छोड़ दोगे। अपनी माता का कहना मानने लगोगे। अच्छे बच्चे बन जाओगे। तभी तुम्हें साथ ले जाना ठीक होगा।"

राजू तुरन्त ही ठीक नहीं हुआ, पर हां धीरे-धीरे उसकी आदतें सुधरती गईं। जब रोने-झींकने को होता, तो तुरन्त उसे अपने रमेश मामा का ध्यान आ जाता और दिल्ली न जाकर गणतंत्र-दिवस न देखने का पछतावा आता।

एक पाजी लड़के का सुधार

मुझे वह अच्छी तरह याद है। कोई नौ-दस वर्ष का लड़का होगा, परन्तु लगता ऐसा था मानो अभी सात का हो और तो और उस की हरकतें भी कुछ ऐसी ही थीं। अपने आगे तो वह किसी को कुछ समझता ही न था। मन में यही सोचता था कि मैं जो कुछ भी करता हूं, ठीक करता हूं। खेल में हार जाना तो उसे बहुत ही बुरा लगता था।

सम्पत अपने धनी पिता और बेहद लाड़ करने वाली माता का इकलौता बच्चा था। कोई बहन-भाई न होने के कारण उसके मन में यह बात समा गई थी कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं। जब पाठशाला गया, तो वहां भी अपने आपे में किसी लड़के को कुछ न समझता था। चाहता था कि कक्षा में प्रथम आऊं तो मैं, और खेलों में जीत हो तो मेरी!

परन्तु ऐसा होने कहां लगा था। पाठशाला में और लड़के भी तो थे जो सम्पत से कहीं अधिक अच्छा काम करते थे, और कहीं अधिक अच्छा खेल सकते थे। इसी बात से सम्पत को चिढ़ थी। जब कभी वह खेल में हार जाता, तो खिसिया कर जीतनेवालों की पिंडलियों पर ठोकरें मारने लगता। एक दिन फुट-बॉल के खेल में उस की टोली हार गई। उसकी टोली ने चार गोल किए थे और विरोधी टोली ने पांच। उसने मुस्करा कर जीतनेवालों को बधाई नहीं दी, अपितु माथा चढ़ा कर जमीन पर पैर पटकने लगा, फिर घड़ी ही भर में पागलों की तरह दौड़-दौड़ कर जीतने वालों की पिंडलियों पर ठोकरें मारने लगा।

इस व्यवहार पर सभी लड़के उससे चिढ़ गए। वे सम्पत को इसका मजा चखाने का कोई उपाय सोचने लगे। सोचते-सोचते उनका ध्यान खेल के मैदान के पास वाले तालाब की ओर चला गया, वे बोले, "यदि अब इसने किसी के लात मारी तो इसे इस का मजा ही चखा दो।"

सम्पत अपनी आदत से कहां बाज आनेवाला था! आदत पुरानी हो चुकी थी। एक दिन हॉकी का मैच था। वह अपनी टोली का कैप्टेन था और जी तोड़कर खेल रहा था, परन्तु विरोधी टोली बढ़िया

निकली और जीत गई। सम्पत को पागलपन सवार हो गया। पहले तो उसने अपनी टोली ही के लड़कों की पिंडलियों पर ठोकरें जमाई और बोला, "तुम्हारे कारण हार हुई है।"

विरोधी टोली के लड़के उसके इस व्यवहार पर हंसने लगे। बस फिर क्या था, वह झपट कर उनके कप्तान के सामने जा खड़ा हुआ और उसकी पिंडली पर जोर से एक ठोकर जमा ही तो दी। लपक कर दूसरे की ओर जा ही रहा था कि लड़कों ने घेरा डाल दिया और बोले, "आओ, बच्चू, लातें चलाने का मजा ही चखा दें; बहुत दिन से तेरी लातें खाते आए हैं।"

"तुम मेरा कर क्या सकते हो, आओ तो देखूं," वह आपे से बाहर होकर इधर-उधर लातें चलाने लगा, परन्तु लड़कों ने उसे दबोच ही लिया।

"एक—दो—तीन" का शब्द हुआ "तीन" पर तालाब के पानी में किसी भारी चीज के गिरने की आवाज सुनाई दी। लड़कों ने सम्पत को तालाब में फेंक दिया था। पानी गहरा नहीं था। सम्पत मुंह में भरी कीचड़-मिट्टी को थूकता हुआ पानी में से शतबार बाहर निकल आया।

इसी समय पाठशाला के प्रधानाध्यापक वहां आ पहुंचे। उन्होंने क्रोधपूर्ण स्वर से पूछा यह सब क्या है?"

"साहब," बहुत दिन से यह सब को लातें मारता था, आज हम ने उसका मजा चखा दिया।"
"सम्पत, जाओ कपड़े बदल डालो और फिर तुरन्त हमारे दफ्तर में आओ।"

जब सम्पत प्रधानाध्यापक के सामने पहुंचा तो उन्होंने कहना शुरू किया, "देखो जी, मुझे ऐसे लड़के पसन्द नहीं हैं जो दूसरों से झगड़ा मोल लेते फिरें। इस प्रकार बिगड़े हुए छोकरे की तरह मार-पीट करना अपने लिए मुसीबत मोल लेना है और तुम ने तो ले ही ली! जीवन में सीखी जाने वाली महत्वपूर्ण बात एक यह भी है कि खेल कूद में हारो, तो मुस्कराते रहो। आखिर सदा एक ही आदमी तो नहीं जीत सकता! इस लिए अपनी हार पर मन मैला नहीं करना चाहिए, बल्कि प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। खेल-कूद के क्षेत्र में यह सब से पहली बात है। दौड़ में या किसी अन्य खेल में जीतने वाले को सब से पहले बधाई देनी चाहिए, और जितने उत्साह और सच्चे दिल से बधाई दी जाएगी, उतना ही अधिक लोग अच्छा समझेंगे।

"दूसरों का मुकाबला न कर पाने पर क्रोध प्रकट करना, लात-बातें चलाना और मार-पीट करना बहुत ही बुरी बात है। तुम्हारे व्यवहार पर लड़कों ने तो उत्तेजित होकर इतना ही किया कि तुम्हें तालाब में फेंक दिया, परन्तु दूसरे लोग बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकते। जेल भी हो सकती है। इसलिए, अब तुम्हें इन बातों से बचने का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए।"

"जी अच्छा," सम्पत ने नम्रतापूर्वक कहा।

"और याद रखना," प्रधानाध्यापक बोले, "यदि हमने फिर कभी इस प्रकार की बात सुनी, तो हम तुम्हें स्कूल से निकाल देंगे।"

"जी अच्छा," सम्पत धीरे से बोला।

"हमें आशा है कि तुम अब कभी हारोगे, तो आगे से कभी ही कर मार-पीट न करोगे," प्रधानाध्यापक ने कहा।

सम्पत ने अपनी बुरी आदत को छोड़ने और अच्छा स्वभाव बनाए रखने का प्रयत्न किया और शीघ्र ही वह स्कूल में सर्वप्रिय बन गया।

बालक के शारीरिक बल को उपयोगी कार्यों में लगवाना

चीजों को तोड़ने-फोड़ने और बिगाड़ने की प्रवृत्ति बहुत से बच्चों और युवकों में समान रूप से पाई जाती है। छोटे-छोटे बच्चों को तो खैर छोड़िये, परन्तु पता नहीं बड़े हो जाने पर भी बहुत से लड़कों में यह रोग क्यों ज्यों-का-त्यों रह जाता है। यह रोग बहुत से अन्य रोगों से भिन्न होता है, क्योंकि इस का "अन्त किसी नियमित समय पर" नहीं होता। अन्य रोगों से तो रोगी धीरे-धीरे मुक्त हो ही जाता है, परन्तु इस रोग में ऐसा नहीं होता। इस का तो कोई-न-कोई उपचार करना ही पड़ता है, तभी यह दूर होता है।

शिशु को सावधानी का पाठ

यदि इस रोग का उपचार प्रारम्भिक अवस्था में न किया गया, तो यह बहुत ही महंगा पड़ता है। जन्म के पूर्व ही बच्चे में "विनाशकता" की यह परम्परा-प्राप्त प्रवृत्ति विद्यमान होती है। कदाचित् यह वंशपरम्परा प्राप्त रोग वाली बात हमारे में यह विचार उत्पन्न कर दे कि 'रोगी' का इस 'रोग' से मुक्त होना कठिन है। हम कहते तो है कि बालक में स्वाभाविक रूप से ही विनाशकता की प्रवृत्ति होती है, परन्तु यह कदापि ज्यों-की-त्यों, नहीं रहनी चाहिये। इस का सुधार आवश्यक है। प्रकृति-शास्त्रज्ञ प्रयोगों द्वारा किसी पौधे के निकम्मे फलों को काम का और स्वादिष्ट बना देता है। इसी प्रकार माता-पिता को चाहिये कि प्रयत्न कर के बालक की बुरी-प्रवृत्ति को बदल दे जिस से उस का भावी जीवन प्रत्येक रूप से उपयोगी हो।

छोटे-छोटे बच्चों को खेलता हुआ देखिये—उन में से कुछ तो अपने खिलौनों को बहुत ही सम्भाल कर रखते है, परन्तु कुछ उन्हे आपस में टक्रा-टक्रा कर तोड़-फोड़ डालते है; कुछ बच्चे महीनों अपने खिलौनों को ज्यों-का-त्यों रखते है, परन्तु कुछ एक ही दिन में नष्ट कर डालते है। कभी-

Photo credit Anant Desai

बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का महत्वपूर्ण कार्य-भार माता-पिता तथा शिक्षकों को दिया गया है। जीवन का क, ख, ग, तथा पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करना माता-पिताओं तथा अभिभावकों पर निर्भर करता है।

अनुचित खेल

में कोई रहता तो है ही नहीं, फिर चिन्ता कैसी; आत्रो देखें कौन अधिक शीशे तोड़ता है। बस फिर क्या था, लगे चलने पत्थर। सारे शीशे चकनाचूर हो गये! चौखट टुकड़े-टुकड़े हो गई!!

जब उन से पूछा गया तो उन्होंने अपना अपराध तो स्वीकार कर लिया, पर ऐसा प्रतीत होता था मानो उन के लिये यह कोई ऐसी गम्भीर बात न हो। मकान खाली था, पत्थर चला दिये।

परन्तु उन लड़कों के माता-पिताओं को उन का यह खेल अच्छा न लगा। दोनों पर बहुत डांट-फटकार पड़ी और कहा गया कि तुम दोनों को नई खिड़की लगवानी पड़ेगी। अतः उन दोनों को अपने जेब-खर्च में से उस खिड़की की बनवाई देनी पड़ी। ये दोनों लड़के जीवन भर किसी मकान की खिड़की आदि पर पत्थर नहीं चलाएंगे।

इस प्रकार की बातों में माता-पिता और बच्चों के दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न होते हैं। माता-पिता को इस बात का अनुभव होता है कि घर बनाने में कितनी कठिनाइयाँ, कितने आत्म-बलिदान और कितने परिश्रम की आवश्यकता होती है। इस के विपरीत बालक के लिए दीवारों, मेज-कुर्सियों और घर की इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं को बिगाड़ना मानो कोई बात ही नहीं होती। वह चीजों को बरतता नहीं, उसे इन का मूल्य क्या मालूम।

बनाने वाले कुछ बिगाड़ते नहीं

जो लड़का लड़की का काम सीख कर कुछ-न-कुछ अपने हाथ से बना लेता है, वह कभी भी दूसरों के फर्नीचर आदि को विकृत नहीं करता। इसलिये यदि बच्चा कोई चीज तोड़-फोड़ दे, या पौधों आदि को कुचल डाले, तो उस पर बिना झिझक जुर्माना कर देना चाहिये जो वह जेब खर्च में से भरे। इस से उसे भली भांति ज्ञात हो जाएगा कि चीजों को बनाने और बगीचे को लगाने में कुछ लगता है। उसे अपनी असावधानी का ज्ञान हो जाएगा। यही कारण है कि बच्चों को अवस्था व शारीरिक बल के अनुसार कुछ-न-कुछ करना सिखाना चाहिये ताकि वे अपने माता-पिता तथा अन्य व्यक्तियों की सहायता करना सीखें। यह मानी हुई बात है कि जिन लड़कों को प्रति दिन कुछ-न-कुछ करना पड़ता है, वे शायद ही कभी दूसरों की चीजों को तोड़ें-फोड़ें, या विकृत करें। बनाने वाले, बिगाड़ने वाले नहीं होते।

यदि घर में बच्चों के सामने, न कि प्रत्यक्ष रूप से उन से अनेक वस्तुओं के मूल्य की चर्चा नियमित रूप से की जाए, तो बच्चों को चीजों की कीमत समझने में बड़ी सहायता मिलती है। गप-शप सुनने की अपेक्षा बच्चों के लिये यह अनेक लाभप्रद होगा कि जीवन की सुख-सामग्री जुटाने के संघर्ष में वे भी अपने माता-पिता और अन्य व्यक्तियों का साथ दें।

बच्चों को यह भी जता देना चाहिये कि जिस वस्तु को भी बर्ते, सम्भाल-सम्भाल कर बर्तें; और साथ ही साथ यह बात भी बता देनी चाहिये कि किसी वस्तु को विकृत व नष्ट करना ऐसा ही है जैसे किसी की कोई चीज चुरा ली जाए।

बालक में सौन्दर्य-प्रेम उत्पन्न कीजिये

बहुत से ऐसे परिवार हैं जहां बच्चों में सौन्दर्यबोध का अभाव होता है। बहुत से लोग तो इस प्रकार के बोध को एक प्रकार का दोष समझते हैं; परन्तु ऐसे लोगों से यह प्रश्न पूछा जाए— "भला, ईश्वर ने सुन्दर वस्तुएं क्यों बनाईं ?" उस का सौन्दर्य-रचना में यही उद्देश्य था न, कि लोग उन्हें देखें और आनन्द प्राप्त करें ? ईश्वर ने चीजों को सुन्दर इसीलिए बनाया है कि उन का मनुष्य के आचरण पर भला प्रभाव पड़े। जब तक हम "हीदर" नामक सुन्दर झाडी को अपनी आंखों से न देख लें, तब तक हमारी समझ में यह बात आ ही नहीं सकती कि Linnæus जैसा महान वनस्पति-ज्ञाता इस के फूलों के एक गुच्छे से इतना प्रभावित क्यों हो गया था कि उस के पास घुटने टेक कर ईश्वर की स्तुति करने लगा कि उस ने इतना सुन्दर फूल बनाया। यदि हम इस झाड़ी और इस के फूलों को देख पाएं, तो यह रहस्य हमारी समझ में आ जाए।

आप से ही बालक में प्रकृति का सौन्दर्य देखने और उस से आनंदित होने की प्रवृत्ति उत्पन्न कीजिये। पत्तियां, पेड़, घास, फूल, पक्षी, तितली,—ये सभी ईश्वर की महिमा प्रदर्शित करते हैं। इन में से प्रत्येक से मानव जीवन को आनंद प्राप्त होता है। यदि बच्चे में आरम्भ से ही इन वस्तुओं के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया जाए, और उन्हें नष्ट करने से रोका जाए, तो उन्हें नष्ट न करेंगे, स्वयं प्रसन्न होंगे और दूसरों को प्रसन्न करेंगे। जो आनंद प्रकृति की सुन्दरता के ज्ञान से प्राप्त होता है, उस से हम और हमारी सन्तान वंचित क्यों रहें ?

दासता के पश्चात् ख्याति

सन १८६४ में उत्तरी व दक्षिणी अमरीका के बीच चलते हुए युद्ध का अन्त होने ही को था। उसी समय "मिज़ूरी" राज्य में "डायमंडग्रोव" नामक के स्थान के निवासी मोजेज कार्वर नामक जमींदार की जमींदारी में एक गुलाम स्त्री के एक पुत्र जन्मा। माता-पिता ने बालक का नाम जॉर्ज रक्खा। अभी जॉर्ज छोटा ही था कि किसी दुर्घना में उसका गुलाम पिता मारा गया और इसके कुछ महीने बाद मां और बच्चे को लुटेरे पकड़ ले गए। कुछ दिन बाद जॉर्ज को तो लुटेरों ने छोड़ दिया, परन्तु उसकी मां फिर कहीं दिखाई न दी।

श्रीमती कार्वर बहुत ही दयावती महिला थीं। उन्होंने जॉर्ज को अपने पास रख लिया। वह बहुत ही छोटा था और बीमार-बीमार सा रहता था। जिन कामों को उसकी अवस्था के अन्य बालक कर सकते थे, वे काम जॉर्ज बेचारे से नहीं होते थे। इसलिए श्रीमती कार्वर उसे लड़कियों के से काम—सीना-पिरोना, बुनना आदि सिखाती थीं।

जॉर्ज अभी ऐसा बहुत बड़ा न हुआ था कि फूल-पत्तों और पौधों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगा। पास ही जंगल में उसने सब की नजर बचाकर एक छोटा सा बगीचा लगाया और उस में भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे उगाने लगा। फूल-पौधों की देख-रेख करते-करते उसे मरते हुए पौधों को जिला-लेना आप से आप आ गया। उसके हाथ में कुछ ऐसा जादू था कि लोग उसे "पौधों का डाक्टर" कहने लगे।

जॉर्ज को प्रकृति-जगत की प्रत्येक वस्तु प्यारी थी, यहां तक कि कभी-कभी तो वह फूलों का गुच्छा हाथ में लिए-लिए ही बिस्तर पर लेट जाता और उसी तरह सो जाता। कभी ऐसा भी होता कि वह मेंढकों और रेंगने वाले जीवों को पकड़कर चुपके से कमरे में ले आता और श्रीमती कार्वर उन्हें देख पातीं, तो डर जातीं और नाराज होतीं।

जॉर्ज को जंगल में जो कुछ भी मिल जाता, वह उसी का नाम जानना चाहता, यहां तक कि वह प्रत्येक पत्थर के टुकड़े, कीड़े-मकोड़े और फूल-पत्ते का नाम जानने का इच्छुक रहता था। जब श्रीमती कार्वर किसी वस्तु या जीव का नाम न बता पातीं, तो वह स्वयं उसका कोई-न-कोई नाम रख लेता था।

अभी छोटा ही था कि एक दिन उसने किसी पड़ोसी के यहां एक रंगीन-चित्र देखा। पहली बार ही उसने रंगीन-चित्र देखा था, इसलिए उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। "किसने बनाया है यह ?" उसने पूछा और जब उसे बता दिया कि एक आदमी अर्थात् एक चित्रकार ने बनाया है, तो वह बोल उठा,

"मैं चाहता हूं कि मैं भी एक दिन ऐसा ही चित्र बना सकूं।" उस दिन से वह सदा रेखाएं खींच-खींच कर कोई-न-कोई आकार बनाता रहता था—कागज पर नहीं, कागज उस गरीब को कहां नसीब था, पत्थर के चपटे-चपटे टुकड़ों पर ही वह चित्र बनाता था और रंग भरने के लिए जंगली फूलों, जड़ों और पेड़ोंकी छाल काम में लाता था। अपने जंगल वाले बगीचे की भांति ही उसने अपने चित्रकारी के अभ्यास को भी गुप्त रक्खा।

जॉर्जको पाठशाला जाने का बड़ा शौक था, परन्तु जिस स्थान पर वह रहता था, वहां कोई भी ऐसा स्कूल न था जिस में हब्शी विद्यार्थी को भरती किया जा सकता। वहां से आठ मील दूर सब से नजदीक एक स्कूल था जिस में वह पढ़ सकता था। जॉर्ज कार्वर दम्पती से गिड़गिड़ाता रहा था कि मुझे स्कूल भेज दीजिए। अन्त में वे राजी हो ही गए। जिस रात वह स्कूल में पहुंचा, उस रात उसे एक गोदाम में पड़ा रहना पड़ा। रात भर चूहे शरीर पर दौड़ लगाते रहे। सवेरा हुआ तो वह उठकर इमारती लकड़ियों के एक ढेर पर अकेला, चुपचाप और भूखा-प्यासा बैठा हुआ था कि एक दयावती महिला श्रीमती वॉटकिंस ने उस पर खाकर कुछ खाने-पीने को दिया। इसके बाद उन्होंने उसे अपने ही पास रहने को जगह दे दी। जॉर्ज ने स्कूल जाना आरम्भ कर दिया। श्रीमती वॉटकिंस बड़े धार्मिक विचारों की स्त्री थीं। उन्होंने जॉर्ज को बाइबल पढ़ना और प्रार्थना करना सिखाया। अस्सी वर्ष की अवस्था तक भी जॉर्ज उसी बाइबल को पढ़ता था और बड़ा सम्भाल कर रखता था जो श्रीमती वॉटकिंस ने उसे उस समय दी थी जब वह बिलकुल बेसहारा था।

स्कूल में पहले ही दिन से उसका नाम जॉर्ज वॉशिंगटन कार्वर हो गया। कार्वर इसलिए कि वह कार्वर की जमींदारी से आया था, और वॉशिंगटन इसलिए कि उसने सुन रक्खा था कि वॉशिंगटन बहुत भला आदमी था और वह स्वयं भी बड़ा आदमी बनना चाहता था। अब वह जोरों से पढ़ाई करने लगा। उसे पढ़ने का बड़ा शौक था। छुट्टी मिलने पर वह अपनी पुस्तक घर ले जाता और उसे अपने सामने ऊंचे पर इस तरह रख लेता कि श्रीमती वॉटकिंस के कपड़े भी धोता जाए और पढ़ता भी रहे। धोबी के काम के अतिरिक्त वह श्रीमती वॉटकिंस के कमरों के फर्श धोता था और अन्य छोटे-मोटे काम करता था।

एक बार उसे खेत में सलाद के पौधों की रखवाली करने को कहा गया। इधर उधर राजहंस के बहुत से छोटे-छोटे बच्चे बाड़ में से होकर सलाद की कियारी में घुसने को बेचैन हो रहे थे। जॉर्ज का काम था सलाद को उनसे बचाना। इतने ही में कुछ लड़के गोलियां खेलने उधर आ निकले और उन्होंने जॉर्ज को भी गोलियां खेलने को बुला लिया। कहां राजहंस के बच्चों को हंकाते रहना, और कहां गोलियों का मजेदार खेल ! पास ही समतल भूमि थी, वहीं खेलने लगे, जॉर्ज भी खेलने लगा। जब खेल चुका और खेत की ओर गया तो क्या देखता है कि सलाद की सारी-की-सारी कियारी चौपट हो चुकी है ; एक भी पत्ता शेष नहीं ! उसे इतना क्रोध आया कि वह राजहंसों को खदेड़ता-खदेड़ता पास ही एक तालाब में जा गिरा। श्रीमती वॉटकिंस जॉर्ज की दशा और अपने सलाद की बरबादी पर बहुत परेशान हुईं, परन्तु जॉर्ज यह बात अवश्य जान गया कि किसी का किसी दूसरे पर भरोसा करने का क्या अर्थ और क्या महत्त्व होता है, और वह इस बात को अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक न भूला।

जब जॉर्ज १३ वर्ष का हो गया, तो और आगे पढ़ने की आशा से "फोर्ट स्कॉट" चला गया।

परन्तु जो कुछ पैसा उसके पल्ले में था वह अधिक समय तक न चल सका। उसे कुछ समय के लिए स्कूल छोड़ना पड़ा ताकि कुछ पैसा कमा ले। कुछ सप्ताह तक वह मजदूरी कर के कुछ पैसा इकट्ठा करता और फिर स्कूल में पढ़ाई शुरू कर देता; जब पैसे खत्म हो जाते, फिर पढ़ाई छोड़कर मजदूरी करने लगता। बहुत से और लड़के तो ऐसी कठिनाइयों की पढ़ाई छोड़ बैठते, परन्तु जॉर्ज को पढ़ने और जीवन में उन्नति करने का ऐसा शौक था कि वह उसे दबा न सकता था, वह इसके लिए बड़े से बड़ा मूल्य चुकाने को तैयार था।

पैसा कमाने के लिए उसे लोगों के बर्तन धोने पड़े; आरे से बड़े-बड़े कुंदों के छोटे-छोटे टुकड़े करने पड़ते; और ऐसे-ही-ऐसे और अन्य काम करने पड़ते जिन्हें कोई और लड़का करने को राजी न होता। गर्मियों की छुट्टियों में वह किसी बड़े जमींदार के यहां नौकरी कर लेता। यदि कभी सौभाग्य से उसे किसी "ग्रीन हाउस"★ में काम मिल जाता, तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहता।

एक बार जॉर्ज किसी ऐसे परिवार में काम करने लगा जहां के लोगों ने उसे कपड़े धोना और उन पर इस्त्री करना सिखाया और जॉर्ज इस काम में होशियार हो गया। (कुछ महीने बाद उसने कुछ रुपए उधार लेकर एक लॉण्ड्री खोल दी और अन्त में वह कॉलेज जाने योग्य हो गया।) जब फुरसत मिलती, तब वह अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए कुछ-न-कुछ पढ़ता अवश्य रहता था। कुछ पैसा कमाने के लिए उसे अपनी लॉण्ड्री में भी काम करना पड़ता था। हाईलैण्ड विश्वविद्यालय में भरती होने के लिए उसने प्रार्थना-पत्र भेजा जो स्वीकार हो गया। जॉर्ज अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी लाँड्री भी बेच डाली और उस नगर को चल दिया जहां हाईलैण्ड विश्वविद्यालय था। परन्तु विश्वविद्यालय में हब्शी होने के कारण भरती न हो सका।

जॉर्ज का हृदय टूट गया। अब तक उसे कभी इतना जबरदस्त धक्का न पहुंचा था। उसकी सारी खुशियां खत्म हो गईं, उसका जीवन नीरस हो गया। वह पढ़ना चाहता था, उसे सीखने की इच्छा थी। वह सोचने लगता कि आखिर लोग मेरे मार्ग में रोड़े क्यों अटकाते हैं ? पर सोचने से क्या होता था। विश्वविद्यालय के दरवाजे उसके लिए बन्द थे। मन मार कर उसने खेती-बाड़ी करने की ठान ली। जमीन के लिए सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजा। उस समय एक स्थान पर नई बस्ती जा रही थी, वहीं उसने भी थोड़ी सी जमीन मांग ली। परन्तु इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए न तो उसके शरीर में बल रह गया था और न ही इतना पैसा था। उसका हृदय दुःखी था। वह अकेला और बेसहारा था, हताश हो चुका था, उत्साहहीन हो गया था। जॉर्ज के लिए ये दिन थे तो बुरे, पर वह फिर भी ऐसी-ऐसी बातें सीखता रहा जो आगे चलकर उसके बड़े काम आईं जिन के द्वारा भावी जीवन में उसे सफलता प्राप्त हुई।

कई वर्ष बीत गए। जॉर्ज को अपनी जमीन छोड़कर किसी दूसरी जगह जाने की सूझी। वहीं और जाकर अपना निजी "ग्रीन हाउस" बनाने और तरकारियां और फूल उगाने की एक आशा उसके हृदय में उभर रही थी। वह चल दिया। जहां तक पल्ले में पैसे रहते, वहां तक वह यात्रा करता रहता; और जहां खत्म हो जाते, वहीं वह ठहर जाता। लोगों के कपड़े धोता, और जब गांठ में पैसा हो जाता, तो फिर

★GREEN HOUSE कोमल पौधों और पत्तियों को हरा रखने या इनकी रक्षा करने के लिए शीशे का घर।

आगे बढ़ने लगता। उसकी कोई मंजिल न थी, उसका कोई ठिकाना न था। बस वैसे ही वह जगह से दूसरी जगह की ओर बढ़ता जाता था। एक दिन इसी तरह चलते-चलते वह संयुक्त राज्य अमरीका के पश्चिमी-मध्य भाग के एक छोटे से नगर में पहुंचा। वहां एक परिवार के दयालु व्यक्तियों ने उसे काम दिया, और घर के मालिक ने उसे शिक्षा जारी रखने का सुझाव भी दिया। "परन्तु" जार्ज बोला, "कैसे ? न मेरे पास पैसा है और न ही कहीं मेरी पहुंच है।"

एक दिन वह कपड़ों पर इस्त्री कर रहा था कि सहसा उसके कानों में एक आवाज सी गूंजने लगी— "तू स्कूल वापस चला जा।" "पर मैं जा तो नहीं सकता," जार्ज ने कहा। फिर वही आवाज कानों में गूंजी, "तू जा सकता है।" इस पर उसने इस्त्री तो नीचे रख दी और खिड़की के पास जा कर झांकने लगा। अन्त में जोर से चिल्ला उठा, "अच्छा, तो मैं स्कूल वापस अवश्य जाऊंगा।" अब उसके हृदय पर से एक प्रकार का बोझ सा हट गया। जो कुछ उसके पास था, तुरन्त ही बेच कर उसने सिम्पसन कॉलेज का रास्ता लिया। सुना था कि वहां हब्शी विद्यार्थियों को भर्ती कर लिया जाता है।

सिम्पसन कॉलेज में पहुंचा, तो उसे भर्ती कर लिया गया और थोड़े ही दिन में उसने अपनी तीव्र बुद्धि और विद्वत्ता से अपने शिक्षकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जार्ज को इस कला में अधिकाधिक प्रोत्साहन देने लगा।

अपना खर्च चलाने के लिए उसने एक लॉण्ड्री खोल दी। कपड़े धो-धोकर ही उस ने कॉलेज की पढ़ाई पूरी की। बहुत कठिन जीवन था, पर जार्ज को इस बात से बड़ा संतोष था कि पढ़ने को तो मिल रहा है। कॉलेज से निकला, तो क्या करे ? उस ने सोचा चित्रकारी ही करूं। उसे विशेषकर पक्षियों, फूलों और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाने का बड़ा शौक था। परन्तु शिक्षकों ने उसे परामर्श दिया कि चित्रकारी द्वारा तुम्हारा भविष्य नहीं बन सकता; हां, कृषि का कार्य अच्छा रहेगा क्योंकि पौधों और प्रकृति से तुम्हें प्रेम भी है, कृषि-कार्य में से ही प्रगति के अन्य मार्ग निकल सकते हैं। जार्ज ने शिक्षकों की बात मान ली। वह सिम्पसन कॉलेज छोड़कर 'आइओवा स्टेट' के 'आइम्स' नामक कृषि-महाविद्यालय को रवाना हुआ।

जब कार्वर 'आइम्स' पहुंचा तो उसके हाथ-पल्ले कुछ न था, केवल हृदय में विश्वास था। इस बार वह अन्य विद्यार्थियों को मेज पर खाना खिलाने का काम करने लगा, परन्तु स्वयं खाने-कमरे के सब से निचले भाग में बैठकर खाया करता था, क्योंकि बेचारा हब्शी था। परन्तु नहीं, उसे इस बात की कोई चिंता न थी, उसे तो पढ़ना था। अब वह वनस्पति-शास्त्र व रसायन शास्त्र का अध्ययन कर रहा था, प्रकृति के रहस्यों को समझने का प्रयत्न कर रहा था, अर्थात् अपने भावी जीवन के महान कार्य की तैयारियां कर रहा था।

पहले दिन जब वह उस ऊंची लाल इमारत की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था जिस में कृषि का विषय पढ़ाया जाता था, तो उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो एक नए संसार में प्रवेश कर रहा हो। यह स्थान उसके लिए और हजारों अन्य व्यक्तियों के लिए एक नया संसार तो था ही। वह घड़ी इतिहास में एक महत्व-पूर्ण घड़ी थी, परन्तु उस समय उसका महत्व ईश्वर के अतिरिक्त और किसे मालूम होता !

चार साल बाद जॉर्ज वाशिंगटन कार्वर ने बी.एस-सी. की डिग्री ली। 'आइम्स' कॉलेज से यह उपाधि पानेवाला वह पहला हब्शी था। एक प्रोफेसर तो उसे अपना सब से अधिक होशियार शिष्य कहते थे। उनका कहना था कि मैं ने आज तक इतना होशियार विद्यार्थी नहीं देखा, वनस्पति के और जीव-जन्तुओं के ऐसे-ऐसे, नए नमूने इकट्ठे करता है कि कुछ पूछिए नहीं, और प्रकृति का बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण करने वाला है। यह बहुत बड़ी प्रशंसा थी, और जॉर्ज इस योग्य भी था।

उन्हीं दिनों बूकर वाशिंगटन ने जो स्वयं गुलाम रह चुका था, कार्वर के विषय में बहुत कुछ सुना। वाशिंगटन ने अलबामा नामक स्थान पर हब्शियों के लिए टस्केगी कॉलेज स्थापित किया था। इस संस्था को उत्पन्न करने के लिए उसने कार्वर का सहयोग चाहा। कार्वर ने यह निमंत्रण कर लिया और अपना नया काम संभालने को चल दिया।

कष्ट उठा-उठा कर, घोर परिश्रम द्वारा जो ज्ञान जॉर्ज ने प्रकृति के विषय में प्राप्त किया था, वह ज्ञान उस के साथ दक्षिणी अमरीका को गया। परन्तु अभी वहां पहुंचे उसे कुछ ही दिन हुए थे कि उसे इस बात का अनुभव हुआ कि मुझे अभी बहुत कुछ सीखना है। यहां ऐसे-ऐसे, नए-नए फूल-पौधे थे जिन्हें उसने कभी पहले न देखा था। संस्था के अन्य विद्यार्थियों से वह इनके नाम पूछने लगा, "इस पौधे का क्या नाम है?" परन्तु कोई भी उसके प्रश्न का उत्तर न दे पाता। इस पर जॉर्ज ने अपने मन में ठान ली कि मैं स्वयं भी इन के नाम सीखूंगा और अन्य विद्यार्थियों को भी सिखाऊंगा।

एक दिन यह भी आ ही गया कि कोई ऐसा पौधा, फूल, बीज या जीव-जन्तु न रहा जिस को वह पहचान न लेता हो और जिस का उसे नाम न मालूम हो। एक बार वहां के विद्यार्थियों को शरारत सूझी। उन्होंने बड़ी चींटी का सिर, गोबरैल के धड़, मकड़ी की टांगों, पतंग के नाक के लम्बे बालों को चतुराई से जोड़कर एक नया जन्तु बना दिया। जॉर्ज से इसका नाम पूछा। थोड़ी देर तक उसने उसे ध्यान से देखा और फिर बोला, "इसका का नाम है पाखंड।"

टस्केगी में जॉर्ज ने अपनी निजी प्रयोगशाला स्थापित की और उसका नाम रक्खा—"ईश्वर की प्रयोगशाला।" उसने तरह-तरह के पौधे, भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियां और नाना प्रकार के जीव-जन्तु अपनी प्रयोगशाला में जमा कर लिए और जब तक वह उनके विषय में ज़रा-ज़रा सी बात न जान गया, तब तक उन के अध्ययन में लगा रहा। इस प्रकार उसे पौधों की कई नई बीमारियों का पता चल गया और उसने उनका इलाज भी ढूंढ़ निकाला। उसने किसानों को अधिकाधिक और अच्छा अनाज पैदा करना सिखाया। प्रायः किसान लोग उसके पास मिट्टी के नमूने भेजते और पूछते कि इन में क्या खराबी है। अपनी प्रयोगशाला में ईश्वर की सहायता से उसने मूंगफली से तीन सौ पदार्थ पैदा किए; इन में साबुन से लेकर दरवाजे की मूठें तक सम्मिलित थीं। मूंगफली से दूध निकाला, साबुन बना, स्याही बनी, लकड़ी पर करने का रंग बना, आइसक्रीम बनी, और चीनी बनी।

शकरकंदी से जॉर्ज ने कलफ तैयार किया, सिरका बनाया, स्याही बनाई, जूते की पॉलिश बनाई, साबुन बनाया, लेई बनाई, अचार बनाया, सलाद का तेल बनाया, लकड़ी पर करने का रंग बनाया, कपड़ा रंगने के हर प्रकार के रंग तैयार किए और ऐसे ही अन्य सैंकड़ों पदार्थ बनाए।

वाशिंगटन नगर के बड़े-बड़े सरकारी पदाधिकारियों के कानों तक भी *"ईश्वर की प्रयोगशाला"*

औरों के लिए किया था। इसीलिए आज संसार भर के लोगों के दिलों में उसकी याद ताजा है। उसने न केवल अपने समय के लोगों का भला किया, वरन् आने वाली पीढ़ियों का भी भला किया।

जॉर्ज ने कभी भी अपने प्रयोगों में बड़े-बड़े उपस्कारों का उपयोग नहीं किया। आज जो लोग, उसकी प्रयोगशाला देखने जाते हैं, उन्हें वहां पंक्तियों में क्रम से रक्खे हुए चमकदार उपस्कार देखने को नहीं मिलते, वहां तो कुछ टूटी हुई बोतलें, खरल की जगह एक साधारण प्याला, "बनसेन लम्प" के स्थान पर एक दवात और उस में ठ,सी हुई एक बत्ती आदि ही दिखाई देते हैं। इन्हीं साधारण उपस्कारों की सहायता से उसने चिनार के वृक्ष की छाल से रेशम बनाया, ज्वार के वृक्ष के डंठल के रेशों से रस्सी बनाई, और भिंडी से कागज बनाया।

जॉर्ज के जीवन पर दृष्टि डालने से यह पता चल जाता है कि कोई कितने ही दीन कुल में क्यों न पैदा हुआ हो, चाहे तो जीवन में उन्नति कर सकता है।

टूटने-फूटने-फटने की आवाज से खुश

आठ महीने का एक सुन्दर सा बालक नरम-नरम गलीचे पर बैठा हुआ था। थोड़ी ही देर में खिसकता-खिसकता किताबों की अलमारी के पास जा पहुंचा, और लगा एक-एक कर के किताबें बाहर खींचने! नौकरानी कहीं बाहर गई हुई थी। मां की नजर पड़ी, तो वह डर गई कि कहीं किताबों को बच्चा नष्ट न कर डाले। उठ कर किताबों से दूर स्थान पर उसे बैठा दिया और उस के चारों ओर खिलौने डाल दिये। पर बालक को तो किताबों की अलमारी ही कुछ अधिक आकर्षक लग रही थी। वह खिसकता-खिसकता फिर वहीं पहुंचा गया और फिर लगा किताबें खींचने। किताबें धड़-धड़ फर्श पर एक-एक कर के गिरने लगीं। बच्चा बहुत खुश हुआ। फिर उसने एक किताब का एक पृष्ठ जो पकड़ कर खींचा, तो पृष्ठ और किताब अलग! तुरन्त ही उसने नन्हे-नन्हे हाथों से पृष्ठ को मरोड़ा, भींचा, और उसकी चुरमुर से वह मारे खुशी के किलकारियां मारने लगा।

मां पुस्तकों को इस प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकती थी। उसने गोपाल को उठा कर कमरे में दूसरी ओर बैठा दिया और दो-तीन पुराने अखबार उस के सामने डाल कर फिर अपनी कढ़ाई करने आ बैठी। बच्चे को और क्या चाहिये था, वह कागजों को फेंकने, फाड़ने और मरोड़ने लगा। उन की खड़खड़ाहट से उसे बड़ी खुशी हुई। थोड़ी देर में उसने एक पृष्ठ को जोर से खींचा; उस के फटने की आवाज उसे बड़ी अच्छी लगी। तुरन्त ही उस ने दूसरा पृष्ठ फाड़ डाला। उसे इस खेल में बड़ा ही आनन्द आने लगा।

इस के बाद देर तक उसने मां को तंग नहीं किया। वह तो बस कागजों के फटने की आवाज से खुश हो रहा था। मां ने सोचा कि बालक को किताबों के पास जाने और उन्हें फाड़ने से रोकने का मुझे अच्छा उपाय सूझा। थोड़ी देर में अखबारों के टुकड़े-टुकड़े हो गये! बच्चा इस खेल से उकता गया, तो फिर किताबों के पास जा पहुंचा। उसने निचले खाने की एक-एक किताब खींच डाली। जब इस से भी जी भर गया, तो पास ही रक्खी हुई मेज के कपड़े से खेलने लगा। उसका कोना पकड़-पकड़ कर खींचने लगा। थोड़ा सा खींचता और खुश होकर किलकारियां मारता। क्या मजे का खेल हाथ

परन्तु बच्चा जहां चाहता खिसक कर चला जाता उसे बे-रोक-टोक इधर-उधर फिरने में बड़ा आनन्द आता; और उसे अब भी अखबार दे दिये जाते, जिन्हें वह खुश हो होकर फाड़ता था ! क्योंकि उसे किताबें अधिक आकर्षक लगती थीं, कुछ फटी-पुरानी किताबें भी उस के सामने डाल दी जातीं जिन्हें वह चाहता तो फाड़ डालता था। परन्तु उस की मां को यह बात कभी न सूझी कि इस प्रकार बच्चे को चीजें नष्ट करने की आदत पड़ती जा रही है। पास पड़े खिलौनों को भी वह आपस में जोर जोर से टकराता, क्योंकि टूटने फूटने की आवाज उसे बड़ी अच्छी लगती थी। थोड़े ही दिनों में उस ने बहुत से खिलौने तोड़-फोड़ डाले। मजे की बात यह थी कि यदि एक खिलौना टूट जाता और गोपाल उसी को चाहता, तो माता-पिता उसे वैसा ही नया खिलौना ला देते। इस प्रकार गोपाल को सदा ही कोई-न-कोई चीज तोड़ने-फोड़ने को मिलती रहती थी।

ज्यों-ज्यों गोपाल बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसकी यह तोड़ने-फोड़ने की आदत भी बढ़ती गई। उस की नित नई शरारतें माता-पिता को महंगी पड़ने लगीं। उसके पिता को तो बहुत ही दुःख हो गया था। उसे तो अपनी और पराई चीजों में अन्तर तक नहीं बताया गया था ! यदि यही बता दिया जाता, तो भी कुछ मुसीबत कम हो जाती ! दिन प्रति दिन वह बढ़ता जाता था। बाहर निकलता तो एक उपद्रव मचा डालता—किसी के फूल नोच लेता, किसी के पौधे तोड़ देता और किसी के गमले फोड़ भागता। उस की शरारतें इतनी बढ़ गईं कि लोग उसे अपने घरों की ओर आते हुए देख कर घबरा जाते थे।

एक दिन गोपाल अपने पिता के साथ बाजार गया। वहां उसे एक छोटासा चमड़े का चाबुक दिखाई पड़ गया। चाबुक ऊपर से मोटा था, और सिरे की ओर पतला होता चला गया था। उस के अन्त में एक फुंदना लटक रहा था। गोपाल को चाबुक बहुत ही अच्छा लगा और उसने अपने पिता से चाबुक ले देने को कहा। उस के पिता को अपना बचपन और चाबुक का शौक याद आ गया। तुरन्त चाबुक खरीद लिया गया, गोपाल चाबुक पाकर बहुत खुश हुआ और हर दम उसे लिए फिरने लगा। अब उस का जी किसी और खेल में लगता था। जब हवा में झटका देता तो 'शरड़-शरड़' की आवाज उसे बड़ी ही भली लगती। बस अब क्या था, फूल हो, पौधा हो, बिल्ली हो, कुत्ता हो जो सामने पड़ता उसी को चाबुक जड़ देता था।

एक पड़ोसी के घर के सामने छोटा सा सुन्दर बगीचा था। उस में एक बड़े से पौधे में नई-नई कोंपलें निकल रही थीं। एक बड़ी सी कोंपल पौधे के बिलकुल बीच में थी और सीधी खड़ी थी। गोपाल के चाबुक के एक ही वार में वह कोंपल गिर पड़ी। इस कोंपल पर ही पौधे का बढ़ना निर्भर था। परन्तु वह उसके चाबुक का शिकार बन गई। पड़ोसी बेचारा था शरीफ आदमी, चुप हो रहा; हां, उसे दुःख बहुत हुआ। परन्तु गोपाल के लिये तो मानो कुछ हुआ ही न था। जब तक छोटे बच्चों को अच्छी तरह समझाया न जाए, उन की समझ में कुछ नहीं आता।

जब माता-पिता सैर को निकलें, तो पेड़ पौधों और फूल पत्तियों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित करें। उन्हें सिखाएं कि फूल-पौधों जैसी सुन्दर वस्तुओं को नष्ट करना अच्छी बात नहीं, और इस तरह उन के हृदय में ऐसी सुन्दर वस्तुओं के प्रति प्रेम उत्पन्न करें। इस का परिणाम यह होगा कि बच्चे सदा सावधान रहेंगे और किसी भी फूल या पौधे को कोई हानि नहीं पहुंचाएंगे।

परन्तु बच्चा जहां चाहता खिसक कर चला जाता उसे बे-रोक-टोक इधर-उधर फिरने में बड़ा आनन्द आता; और उसे अब भी अखबार दे दिये जाते, जिन्हें वह खुश हो होकर फाड़ता था ! क्योंकि उसे किताबें अधिक आकर्षक लगती थीं, कुछ फटी-पुरानी किताबें भी उस के सामने डाल दी जातीं जिन्हें वह चाहता तो फाड़ डालता था। परन्तु उस की मां को यह बात कभी न सूझी कि इस प्रकार बच्चे को चीजें नष्ट करने की आदत पड़ती जा रही है। पास पड़े खिलौनों को भी वह आपस में जोर जोर से टकराता, क्योंकि टूटने फूटने की आवाज उसे बड़ी अच्छी लगती थी। थोड़े ही दिनों में उस ने बहुत से खिलौने तो-फोड़ डाले। मजे की बात यह थी कि यदि एक खिलौना टूट जाता और गोपाल उसी को चाहता, तो माता-पिता उसे वैसा ही नया खिलौना ला देते। इस प्रकार गोपाल को सदा ही कोई-न-कोई चीज तोड़ने-फोड़ने को मिलती रहती थी।

ज्यों-ज्यों गोपाल बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसकी यह तोड़ने-फोड़ने की आदत भी बढ़ती गई। उस की नित नई शरारतें माता-पिता को महंगी पड़ने लगीं। उसके पिता को तो बहुत ही दुःख हो गया था। उसे तो अपनी और पराई चीजों में अन्तर तक नहीं बताया गया था ! यदि यही बता दिया जाता, तो भी कुछ मुसीबत कम हो जाती ! दिन प्रति दिन वह बढ़ता जाता था। बाहर निकलता तो एक उपद्रव मचा डालता—किसी के फूल नोच लेता, किसी के पौधे तोड़ देता और किसी के गमले फोड़ भागता। उस की शरारतें इतनी बढ़ गईं कि लोग उसे अपने घरों की ओर आते हुए देख कर घबरा जाते थे।

एक दिन गोपाल अपने पिता के साथ बाजार गया। वहां उसे एक छोटासा चमड़े का चाबुक दिखाई पड़ गया। चाबुक ऊपर से मोटा था, और सिरे की ओर पतला होता चला गया था। उस के अन्त में एक फुंदना लटक रहा था। गोपाल को चाबुक बहुत ही अच्छा लगा और उसने अपने पिता से चाबुक ले देने को कहा। उस के पिता को अपना बचपन और चाबुक का शौक याद आ गया। तुरन्त चाबुक खरीद लिया गया, गोपाल चाबुक पाकर बहुत खुश हुआ और हर दम उसे लिए फिरने लगा। अब उस का जी किसी और खेल में लगता था। जब हवा में झटका देता तो 'शरड़-शरड़' की आवाज उसे बड़ी ही भली लगती। बस अब क्या था, फूल हो, पौधा हो, बिल्ली हो, कुत्ता हो जो सामने पड़ता उसी को चाबुक जड़ देता था।

एक पड़ोसी के घर के सामने छोटा सा सुन्दर बगीचा था। उस में एक बड़े से पौधे में नई-नई कोंपलें निकल रही थीं। एक बड़ी सी कोंपल पौधे के बिलकुल बीच में थी और सीधी खड़ी थी। गोपाल के चाबुक के एक ही वार में वह कोंपल गिर पड़ी। इस कोंपल पर ही पौधे का बढ़ना निर्भर था। परन्तु वह उसके चाबुक का शिकार बन गई। पड़ोसी बेचारा था शरीफ आदमी, चुप हो रहा; हां, उसे दुःख बहुत हुआ। परन्तु गोपाल के लिये तो मानो कुछ हुआ ही न था। जब तक छोटे बच्चों को अच्छी तरह समझाया न जाए, उन की समझ में कुछ नहीं आता।

जब माता-पिता सैर को निकलें, तो पेड़ पौधों और फूल पत्तियों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित करें। उन्हें सिखाएं कि फूल-पौधों जैसी सुन्दर वस्तुओं को नष्ट करना अच्छी बात नहीं, और इस तरह उन के हृदय में ऐसी सुन्दर वस्तुओं के प्रति प्रेम उत्पन्न करें। इस का परिणाम यह होगा कि बच्चे सदा सावधान रहेंगे और किसी भी फूल या पौधे को कोई हानि नहीं पहुंचाएंगे।

जिन बच्चों में बिल्ली-कुत्तों और अन्य पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया जाता है, वे उन का बड़ा ख्याल रखते हैं।

यदि माता-पिता ने तुम्हें चीजों के तोड़ने-फोड़ने से रोका, तो तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। जीवन तुम्हारा सुख से बीतेगा, तुम्हारे आस-पास के लोग तुम से प्रसन्न रहेंगे, तुम से कोई भय नहीं खाएगा और सब तुम्हें प्यार करेंगे। यदि किसी वस्तु को हानि पहुंचाने पर तुम्हारे पिता तुम पर नाराज हों, तो उन्हें निर्दय न समझो, वह जो कुछ करते हैं, तुम्हारे भले के लिये करते हैं, ताकि तुम बड़े होकर भले आदमी बनो, तुम्हारा सब आदर करें, तुम्हें प्यार करें।

टाल-मटोल में समय गंवाना

बहुत से बच्चे समय गंवाते हैं। परन्तु यह दोष केवल बच्चों तक ही सीमित नहीं, स्त्री-पुरुष भी ऐसे बहुत से हैं जो समय गंवाते रहते हैं। समय गंवाने वाला पुरुष कभी नष्ट करने वाला बालक भी रहा होगा। इस प्रकर समय को नष्ट करना भी एक प्रकार की आदत है तुरंत ही इस के अन्त का उपाय कीजिए।

कार्यदक्ष व्यक्ति फुर्ती से अपना कार्य आरम्भ कर के तड़ाक-फड़ाक उसे कर डालता है। जो व्यक्ति इस प्रकार काम नहीं कर सकता, वह या तो बेकार रहता है, या फिर उसे बहुत ही थोड़े वेतन पर काम करना पड़ता है, क्योंकि आखिर लोग उस के ढीलेपन के दोष से परिचित हो ही जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा व्यक्ति कमा क्या सकता है? पांच रुपए रोज या एक रुपया रोज? बालक की छोटी अवस्था में ही जिन बातों की ओर माता-पिता और शिक्षक को ध्यान देना चाहिये, यह भी उन में से एक है।

यदि हम इस बात को अधिक ध्यानपूर्वक सोचें कि हमारी शिक्षा और हमारे अनुशासन का अंतिम परिणाम क्या होगा, तो किसी-न-किसी प्रकार हमारे उपाय वस्तुतः बदल जाएंगे। पर आपत्ति तो यह है कि हम में से बहुत से व्यक्ति इस पर तनिक भी नहीं सोचते। बस हमें हर काम में हड़बड़ मची रहती है; और होता यह है कि कभी-कभी तो स्वयं हम भी नहीं बता सकते कि हम कर क्या रहे हैं और हमारा उद्देश्य क्या है। यही नहीं कि हम कभी-कभी चरित्र-रूपी मन्दिर की ओर नहीं देखते, बल्कि यह भी बिलकुल भूल जाते हैं कि हमारे हाथों किसी चरित्र-रूपी मन्दिर का निर्माण हो भी रहा है। हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि बालक के चरित्र-रूपी मन्दिर की दीवारें हम जिन ईंटों से जानबूझ कर या अज्ञानता से चिन रहे हैं, वे ईंटें बालक के पुरुष बन जाने पर भी जहां की तहां रहेंगी। अतः हमें इस बात पर भली भांति सोच-विचार कर लेना चाहिये कि हम किस प्रकार की ईंटें और किस किस्म का मसाला प्रयोग में ला रहे हैं।

समय गंवाने वाले बालक के साथ मिल कर काम कराइये

अपनी पसन्द के कामों में प्रायः बालक उत्सुकता व तीव्रता दिखाते हैं। जिन कामों में उन की रुचि नहीं होगी, उन्हें ही करने में वे टाल-मटोल करते हैं। अतः जो काम बच्चों को अच्छे न लगते हों वही काम माता को बच्चों के साथ मिल कर कराने चाहियें। एक बार कोशिश तो कर देखिये।

यदि साथ-साथ काम करने-कराने वाले भी अच्छे हों और बात-चीत भी रोचक हो, तो कैसा ही अप्रिय काम क्यों न हो, कम मुश्त लगता है। बालक से कहिए कि भई जब तुम किसी काम में हमारा हाथ बंटाते हो, तो हमें उस काम में बड़ा ही आनंद आता है। उस की तत्परता की प्रशंसा कीजिये ताकि

Pranatkumar

समय ही प्रायः बच्चे हिचर-मिचर करते हैं। ऐसी अवस्था में दो-चार बार बालक को कपड़े पहनने या बदलने में सहायता दीजिए और कहिए कि देखो तो यह काम कितनी जल्दी हो सकता है। फिर इस के बाद यदि आप पास ही हों, तो खड़ी-खड़ी देखती रहिये कि बालक इस काम में कितनी देर लगाता है। इस के उपरांत उस से अपने आप अकेला यह काम चन्द ही मिनट में कर डालने को कहिये। परन्तु उसे इतना कम समय न दीजिये कि यह कुछ कर ही न सके, आखिर को तो बच्चा ही है, आप की सी फुर्ती उस में कहां।

यदि आप के सारे अन्य प्रयत्न विफल रहें और बालक सवेरे को समय पर तैयार न होता हो और नाश्ते के लिये आने में देर लगाए, तो सब चीजें उठा कर अलग रख दीजिये। जब वह आए, तो सीधा-सादा नाश्ता, उसे दीजिये, कोई अच्छी चीज न दीजिये। पर हां, उसे भूखा न रखिये। इस परिस्थिति में उस का भूखा रहना अच्छा नहीं।

सराहना द्वारा प्रोत्साहन

यदि बालक ने समय पर और भली भांति अपना काम कर लिया हो, तो उस की सराहना करने में न चूकिये। बालक को यह मालूम होना चाहिये कि मैं जब भी किसी को अच्छी तरह करने की कोशिश करता हूं, माता जी मुझे अवश्य ही शाबाशी देती हैं। प्रायः बच्चे उस बालक ही के समान होते हैं जो यह कह बैठा था—"मैंने तो बहुत से काम ठीक किये हैं, पर माता जी ने तो कभी एक शब्द भी नहीं कहा; पर हां, यदि मुझ से कोई काम बिगड़ जाए तो वह अवश्य ही कुछ-न-कुछ कहती हैं। इस बात में तो बालक सर्वथा निर्दोष है। वह ठीक ही तो सोचता है; यदि काम बिगड़ जाने पर उसे कुछ कहा जाए, तो ठीक काम हो जाने पर उस की प्रशंसा भी तो आवश्यक है।

यदि बच्चे के इस प्रकार के सुधार में अनेक उपाय निष्फल रहें, तो सब से अच्छा उपाय यह होगा कि उसे कुछ बातों से वंचित रक्खा जाए। उदाहरणतः उस से कहा जाए, "मोहन, तुम ने अपना काम ही जल्दी-जल्दी समाप्त नहीं किया, नहीं तो हमारे साथ बाजार चलते!" इस पर बालक आपत्ति करेगा।

तो कहिये, "नहीं भई इस बार तो तुम चल ही नहीं सकते। हम ने तुम से कई बार कहा कि अपना काम जल्दी से निपटा लिया करो। अब आगे को तुम्हें यह बात याद रहेगी।"

कभी-कभी बच्चे, विशेषकर लड़के पाठ्य पुस्तकों से कुछ सीखने में बड़ा आलस्य करते हैं। उन का मन पढ़ने में नहीं लगता—वे पढ़ना चाहते ही नहीं। ऐसे लड़के के सामने घर में पड़ी कोई बिगड़ी हुई बड़ी घड़ी या इसी प्रकार की कोई और वस्तु रख कर कहिए कि यह चल ही नहीं रही है, शायद इस में मैल अटा पड़ा है। लड़का तुरन्त ही उलट-पलट कर ध्यानपूर्वक देखने लगेगा, फिर उस से कहिए जरा इस की सफाई ही कर डालो, पर देखना कोई चीज खो न जाए, बड़ी सावधानी से काम करना, जब गर्द-बर्द झाड़ चुको तो मशीन को तेल की कुप्पी से तेल डाल कर जोड़ डालना। बच्चे ऐसे कामों को बहुत पसन्द करते हैं। कभी-कभी तो माताओं को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ है कि लड़कों ने बिगड़ी हुई घड़ी के न चलने का कारण मालूम कर लिया है।

यहां यह बात आवश्यक है कि बच्चों को ऐसे कामों में लगाया जाए, वहां यह देखते रहना भी जरूरी है कि वह जो कुछ भी करें ठीक रीति से करें।

इन मामले में और बच्चों से सम्बन्ध रखने वाली इसी प्रकार की अन्य बातों में हमें धैर्य से काम लेना चाहिये। हम में से कुछ इस बात में बड़ी-बड़ी गलतियां कर बैठते हैं। हमें अपनी भूलों और दूसरे की गलतियों से लाभ उठाना चाहिये।

कहानी

राजकुमारी 'टाल-मटोल'

चाहे कितना ही आवश्यक काम क्यों न होता, ललिता उसे कभी समय पर न करती, उस की आदत थी काम को टालते रहने की; सोचती कि अभी नहीं, तो थोड़ी देर में कर लूंगी—नहीं तो कल कर लूंगी। कभी कभी उसकी माता कहतीं—"कहो राजकुमारी टाल-मटोल, मैं ने जो काम दिया था कर लिया ?"

इस पर वह अपने मन में निश्चय करने लगती है कि मैं अब हर काम सदा समय पर कर डालूंगी। 'राजकुमारी' शब्द तो उस के कानों में मिश्री घोल देता था—न मालूम कितनी सुन्दर-सुन्दर वस्तुएं उसकी आंखों के सामने नाचने लगती थीं। परन्तु यह 'टाल-मटोल' शब्द उसे जरा न भाता था। अर्थ तो इस का स्पष्ट ही था!

"उ—ऊं," ललिता जम्भाई लेती हुई गर्म-गर्म बिस्तर में और नीचे खसक जाती! मां के इधर-उधर चलने की आवाज उस के कानों में आती और ललिता पांचवीं बार अपने मन में कहती—"अब तो उठना ही चाहिये।" परन्तु जब तक उस के पिता तैयार होकर नाश्ता करने न आ जाते, तब तक वह बिस्तर से न निकलती। हड़बड़ी में कपड़े का कोई बटन टूट जाता, तो वह झल्ला उठती—" इसे भी इसी समय टूटना था, यहां तो देर हो गई," और समय न होने के कारण बटन की जगह पिन लगाई जाती!

"देखो, बेटी ललिता," एक दिन बाहर जाते हुए उसके पिता ने कहा, "ये रक्खे हैं कुछ पत्र, इन्हें डाक के खम्भे में डाल देना, देखो बहुत जरूरी हैं ये, आज ही जाने हैं, भूल न जाना!"

"पाठशाला जाते समय मैं उन पत्रों को लेती जाऊंगी," ललिता ने जीने पर चढ़ते हुए अपने मन में कहा।

"अरे फराक का भी बटन टूट गया, कैसी मुसीबत है, अब तो पिन ही लगानी पड़ेगी, देर तो वैसे हो ही गई," ललिता खिसियाई। "लो इन्द्रा तो आ भी पहुंची! आई इन्द्रा, आई," ललिता ने खिड़की में से सिर निकाल कर कहा।

"ललिता बेटी," उसकी माता ने उसे बाहर निकलते हुए देख कर कहा, "जब तुम आज दो पहर को पाठशाला से लौटो, तो कुसुम बहन जी से नमूने की किताब लेती आना, मुझे तुम्हारी नई फराक काटनी है।
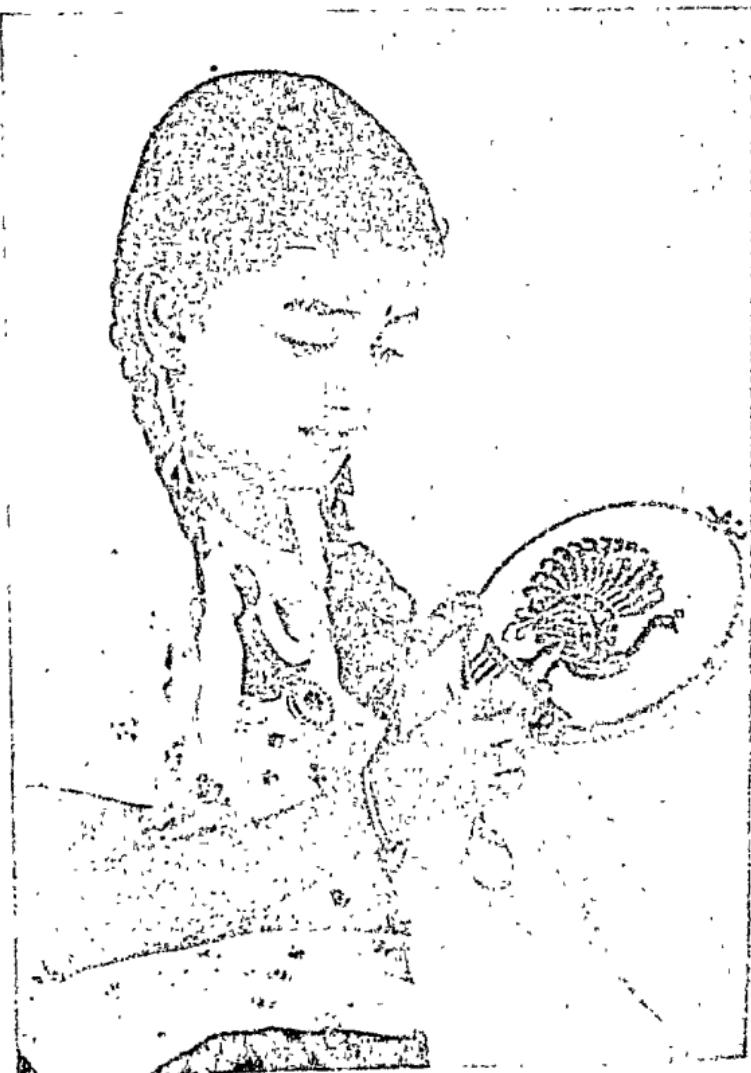
ललिता थी तो बड़ी अच्छी लड़की परन्तु मां को उस के टाल-मटोल करने और भुलक्कड़पन पर दु:ख होता था। दरवाजे पर खड़ी वह इस समय ललिता को देख रही थीं और उन्हें यही ख्याल सता रहा था कि इस लड़की में समय पर काम करने की आदत डालें तो कैसे डालें।

कमरे में लौटीं, तो देखा पत्र जहां के तहां धरे हैं; तुरन्त ही उन्हें डाक में डालने दौड़ीं।

उस दिन रात को जब सब खाना खाने बैठे, तो ललिता की नजर पास ही रक्खे हुए एक डब्बे पर पड़ी। डब्बा बहुत ही सुन्दर रीति से सुन्दर कागज में लिपटा हुआ था और ऊपर सुन्दर सा फीता बंधा हुआ था। वह सोचने लगी कि आज तो मेरा जन्म दिन भी नहीं, तो फिर यह क्या है ? यदि उपहार है तो कैसा ? उसकी उत्सुकता पल-पल बढ़ने लगी।

"यह तुम्हारे ही लिये है, ललिता," उस के पिता ने हंसते हुए कहा, "पर अभी न खोलना, खाना खा लो, फिर खोलना।"

परन्तु इस समय तो ललिता इस काम को तड़ाक-फड़ाक कर डालना चाहती थी, टाल-मटोल उसे इस समय न सूझी। वह उतावली हुई जा रही थी कि कब बढ़ें और कब खोल डालूं। कई बार उस के हाथ उस सुन्दर डब्बे की ओर बढ़े।

"अभी नहीं ललिता," मां ने कहा, "खाना खा चुको पहले।"

ललिता ने जैसे-तैसे भोजन किया और फिर पूछा, अब खोल लूं ?"

अनुमति मिलते ही उसने फीता खोल डाला। कागज हटा कर देखा तो एक सुन्दर सा डब्बा निकला ढक्कन उठाया तो क्या देखती है कि सुनहरे-रुपहले कागज का एक सुन्दर सा ताज है। उस में चारों ओर छोटे-छोटे सितारे जगमगा रहे थे और सामने की ओर लिखा हुआ था—'राजदुलारी टाल-मटोल'।

ललिता को तुरन्त सवेरे वाले पत्र याद आए, नमूने की किताब याद आई, सितार पर अभ्यास न करना याद आया !

ललिता आंखें झुकाए ताज को देख रही थी कि उसके पिता ने कहा, "हां तो उठा कर पहन लो यह ताज, तुम्हारे सिर पर ठीक बैठेगा।"

ललिता के पलक जल्दी-जल्दी झपकने लगे, और दो मोटे-मोटे आंसू उसकी आंखों में चमकने लगे। "माताजी," ललिता बोली, "मुझे यह ताज न पहनाइये।"

"भई या तो तुम इस घड़ी से हर काम को समय पर करने और टाल-मटोल न करने का निश्चय कर लो, या यह ताज पहन लो, एक काम तो करना ही पड़ेगा," उस की माता ने उत्तर दिया।

तीनों में बहुत देर तक बातें होती रहीं। उस के पिता ने कहा, "देखो ललिता बेटी, काम में टाल-मटोल करना बहुत ही खतरनाक बात है, दूर क्यों जाओ आज सवेरे की ही बात ले लो, जिन पत्रों को मैं तुम से डाक में डालने को कह गया था, वे बहुत ही जरूरी थे। यदि तुम्हारी माता उन्हें जाकर न डाल आतीं, तो वे आज न निकलते और बहुत काम बिगड़ जाता।"

उस की माता बोली, "मैं तुम्हारी नई फ्राक काटना चाहती थी, परन्तु तुम नमूने की किताब ही लाना भूल गईं और कल से मुझे इतना अधिक काम है कि अब अगले सप्ताह तक उसे हाथ न लगा

E C Jayasekara

सकूंगी।" अवसर अच्छा था, इसलिये उन्होंने और दो-तीन भूलों की ओर संकेत किया—"और हां, कुछ दिन से तुम सितार का अभ्यास भी नहीं कर रही हो, आज मास्टरजी भी यही कह रहे थे। मेरा और तुम्हारे पिताजी का विचार तो यही है कि इस से तो यही अच्छा होगा कि तुम सितार सीखना ही बन्द कर दो।"

"माताजी!" ललिता की आवाज भर्रा गई। वह इस के अतिरिक्त और न बोल सकी। उसे सितार का बहुत ही शौक था। बुरी आदत थी हर काम में टाल-मटोल। हां, जब सितार का अभ्यास करने बैठ जाती, तो खूब करती। सितार सीखना छोड़ने की बात सुन कर उसे बड़ा दुःख हुआ।

"ये बातें तुम्हें साधारण लगती होंगी, ललिता," उसके पिता ने कहा, "परन्तु समय पर काम करना बहुत आवश्यक है। इसी बात पर तुम्हें एक छोटी सी कहानी सुना दूं। एक समय की बात है कि हमारे इसी नगर में, यहां से कुछ ही दूर एक बहुत बड़ी इमारत थी। इस का मालिक एक बहुत बड़ा सेठ था। उसका मैनेजर इस इमारत के बीमा-पत्र को नया कराने में टाल-मटोल करता रहा और समय निकालता रहा। आखरी दिन शाम को छः बजे सेठ को बीमा-पत्र का सहसा ध्यान आ गया। पूछने पर मालूम हुआ कि अभी यूंही पड़ा है। सेठ के हाथों के तोते उड़ गये। उसने तुरन्त बीमे वाले को बुला कर बीमा-पत्र नया करा लिया। उसी रात को कोई दो बजे उस इमारत में न जाने कैसे आग लग गई और सवेरे तक सारी-की-सारी इमारत जलकर राख हो गई। सोचो तो, यदि सेठ भी इस काम को टाल देता कि सवेरे कर लेंगे, तो क्या होता!"

"कभी-कभी रोज-रोज एक ही सा काम करते-करते उकता जाते हैं," उस की माता ने कहा, "परन्तु जितनी टाल-मटोल की जाएगी, उतना ही काम कठिन होता जाएगा।"

"और बहुत ढेर सा हो जाएगा," ललिता बोली।

माता-पिता ने उस ताज को ऐसी जगह रख दिया जहां से वह ललिता को दिखाई देता रहे और उसे अपने निश्चय का ध्यान रहे।

दयालुता को प्रोत्साहन

कोई महाशय गाड़ी से आने वाले थे। एक दूसरा व्यक्ति उन के स्वागत को स्टेशन पहुंचा, परन्तु उस ने आने वाले को कभी पहले देखा न था, पहचानता कैसे, उस से इतना कहा गया था कि आने वाला आदमी लम्बे कद का है और उस में एक विशेष गुण यह है कि सदा किसी-न-किसी की सहायता करने को तैयार रहता है। गाड़ी आई। सब उतरने वाले उतरने लगे, परन्तु एक लम्बा सा आदमी उतर ही रहा था कि एक बहुत बूढ़ा आदमी उसी डब्बे में चढ़ने लगा। उस लम्बे से व्यक्ति ने तुरंत बूढ़े को हाथ से सहारा दे कर ऊपर चढ़ा दिया और जब उसे अच्छी तरह अन्दर बिठा दिया, तब स्वयं नीचे उतरा। निस्संदेह यही वह आने वाले महाशय थे। यह संसार कितना भिन्न होता, कितना सुन्दर होता, कितना प्रेममय होता, यदि हम में से प्रत्येक व्यक्ति के विषय में यही कहा जाता कि भई, अमुक व्यक्ति तो सदा ही किसी-न-किसी की सहायता करता रहता है। हम अपने प्रेम और अपनी सहानुभूति द्वारा कुछ ऐसा कर सकते हैं कि दूसरों को सुख पहुंचे। हमें तो अपने शत्रुओं तक से प्रेम करना चाहिये और बदी का बदला नेकी से देना चाहिए। इस प्रकार के व्यवहार में हम कुछ खोते हैं, तो कुछ पाते हैं; परन्तु खोते हैं शत्रु और पाते हैं मित्र और प्रसन्नता व संतोष अलग प्राप्त होता है। किसी ने कहा है: "दयालुता उड़ कर लगती है; यदि आप के अन्दर दया कूट-कूट के भरी है तो यह हो नहीं सकता कि आप के पड़ोसी पर इस का प्रभाव न पड़े।"

किसी सज्जन ने अपने गरीब पड़ोसी को किसी त्योहार पर थोड़ी सी मिठाई भेजी। पड़ोसी ने थोड़ा-बहुत पकवान पकाया था। उसने थोड़ा सा पकवान पास ही रहने वाली धोबिन और उस की छोटी सी लड़की को भेज दिया। पास ही गली में एक अनाथ लड़का रहता था। धोबिन की लड़की दौड़ी-दौड़ी गई और अपने घर बने हुए थोड़े से मीठे चावल उसे दे आई। लड़के के मुरझाए चेहरे पर खुशी झलकने लगी। वह खा ही रहा था कि एक छोटी सी चिड़िया चूं-चूं करती हुई वहां आ पहुंची। लड़के के हृदय में दया उमड़ आई। उस ने चावल के चन्द दाने चिड़िया की ओर फेंक दिये; वह चुगने लगी।

P. K. Patel

बदी का बदला नेकी

नेकी का बदला नेकी से देना कोई कठिन काम नहीं, स्वाभाविक भी बात है। परन्तु बदी का बदला . . . . ? कभी-कभी ऐसा होता है कि जिन से हमें कोई आशा नहीं होती, वे हृदय को उदार दिखा जाते हैं; और जिन से हमें प्रत्येक बात की आशा होती है, वे समय पर कोरे निठल्ले निकल जाते हैं।

जिम नामक गुलाम की कहानी है। वह बड़ा ईमानदार था और अपने स्वामी की सेवा सच्चे हृदय से करता था। स्वामी को भी जिम का बड़ा ख्याल रहता था। उस की आंखों में अपने दास की बड़ी कद्र थी। उस ने जिम को अपने खेतों की देख-रेख करने वाला सब से बड़ा अफसर बना दिया। यह अमरीका के गृह-युद्ध से बहुत पहले की बात है, और यह कहानी अमरीका ही की है। एक दिन जिम अपने स्वामी के साथ बाजार गया। वहां एक स्थान पर, गुलाम बेचे और खरीदे जा रहे थे। उन गुलामों में एक बहुत बूढ़ा आदमी था। उस की कमर झुक कर दोहरी हो गई थी और सारे बाल पक चुके थे। जिम की नजर उस पर पड़ गई। उस ने अपने स्वामी से कह कर उस बुड्ढे को खरीदवा लिया। घर पहुंचे तो स्वामी ने पूछा, "कहो भई जिम, इस बूढ़े को खरीद तो लाए, पर अब इस का करें क्या?

जिम ने उत्तर दिया, "मालिक, इसे मेरे पास मेरी कोठरी में रहने दीजिये; जो कुछ काम यह कर सकेगा, मैं करा लूंगा।"

जिम उस बूढ़े का बड़ा ख्याल रखता था और उस की बड़ी सेवा करता था। अन्य लोग इस बात को बड़े ध्यान से देखने लगे। मालिक का ध्यान भी इस ओर गया। वह सोचने लगा कि हो सकता है कि बूढ़ा जिम का कोई सगा-संबंधी हो। एक दिन वह बूढ़ा बीमार हो गया। मालिक ने देखा कि जिम उस की दवा-दारू और टहल-सेवा में लगा हुआ है। उस ने जिम को बुला कर पूछा, "क्यों भई, बूढ़े की बड़ी सेवा हो रही है, क्या कोई रिश्तेदार निकल आया?"

"जी नहीं," जिम ने उत्तर दिया।

"तो फिर कोई जान-पहचान है क्या?" मालिक बोला।

"जी नहीं," जिम ने कहा, "एक बहुत पुराना शत्रु है। बहुत दिन की बात है इसी ने मुझे मेरे गांव से चुराया था और गुलाम बना कर बेच डाला था। बाद में यह स्वयं पकड़ा गया और बेच डाला गया। मैं ने उसे देखते ही पहचान लिया था। ईश्वर ने कहा भी तो है—'यदि तेरा शत्रु भूखा हो, तो खाना खिला; और यदि प्यासा हो, तो पानी आदि पिला।' "

उस दिन स्वामी ने अपने दास से एक महान शिक्षा प्राप्त की। वह गरीब गुलाम बहुत से पढ़े-लिखे व्यक्तियों से कहीं अधिक दयालुता के नियम को समझता था।

जिन घरों में बच्चों के सामने दयालुता का नमूना रक्खा जाता है, और जिन्हें दूसरों से वैसा ही बरताव करना सिखाया जाता है, जैसा वे अपने प्रति दूसरों से चाहते हैं, वहां बच्चे आगे चल कर भी दयालु ही रहते हैं और बहुधा दूसरों के सुख-दुःख का ध्यान रखते हैं।

असावधानी के कारण निर्दयता

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ बच्चे जन्म से ही कटुभाषी और कठोर स्वभाव के होते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि इन के हृदय में दया नाम मात्र को भी नहीं। उन्हें इस बात का ख्याल

जब बच्चा इतना बड़ा हो जाए कि कुछ समझने लगे, तो जिस प्रकार वह दूसरों को मारे-पीटे, उसी प्रकार कभी-कभी उस को भी मारना-पीटना चाहिये; परन्तु इस प्रकार का दण्ड देते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। किसी भी दशा में बच्चे को ऐसा कुछ नहीं करने देना चाहिये, जिस से दूसरों को दुःख पहुंचे, या चोट लगे। उसे सिखाना चाहिये कि दूसरों को भी दुःख पहुंचता है, दूसरों को भी चोट लगती है, दूसरों को भी बुरा लगता है। बालक को कुत्ते, बिल्ली या किसी अन्य जानवर को भी सताने नहीं देना चाहिये। जितनी जल्दी उस के हृदय में अन्य लोगों तथा पालतू जानवरों के प्रति सहानुभूति पैदा हो जाए, उतना ही उस के लिये अच्छा है, और दूसरों के लिये भी सुख की बात हो। अतः फिर वही बात आ जाती है कि बालक के शिक्षण में नमूने का बहुत महत्व होता है।

दूसरे बच्चों के साथ रख कर बालक को दयालुता का पाठ सिखाइये

अन्य बालकों में रह कर बच्चा बहुत कुछ सीख जाता है—उसे बहुत सी आवश्यक बातें आ जाती हैं। वह दूसरों की आवश्यकताओं और दूसरों की भावनाओं को समझने लगता है। उसे सिखाइये कि जिस प्रकार कोई बात तुम को अच्छी-बुरी लग सकती है, उसी प्रकार दूसरों को भी लग सकती है।

सहानुभूति व दयालुता पर बातें करते समय बच्चों को साधारण रीति से और सीधी-सादी भाषा में समझा देना चाहिये, बच्चे बड़ी-बड़ी और गूढ़ बातें नहीं समझ पाते। जब भी कोई बालक किसी अन्य बालक से अच्छी तरह पेश आए, तब ही अपने बच्चे का ध्यान उस ओर आकर्षित कीजिये और व्यावहारिक रूप से उस का शिक्षण कीजिये। बच्चे जिन बातों को नहीं समझ पाते, उन में उन की रुचि नहीं होती।

यदि किसी बालक की टांग या बांह टूट जाए, तो दूसरे बालक का थोड़ी देर के लिये उस के पास जाना कई प्रकार से लाभदायक सिद्ध होता है। जब वह उस बच्चे को मजबूरी की हालत में पड़ा हुआ देखता है, तो वह स्वयं सावधान रहने का प्रयत्न करता है क्योंकि वह सोचता है कि कहीं मेरी भी यही दशा न हो जाए। यदि इस समय उसे ठीक रीति से बता दिया जाए, तो वह समझने लगता है कि पीड़ा क्या होती है; और इस के परिणाम स्वरूप वह दूसरों के दुःख को दुःख समझने लगेगा, उस के हृदय से दया उमड़ने लगेगी। हां, यह याद रहे कि दूसरों के दुःख-पीड़ा के सम्बन्ध में जो कुछ भी सिखाया जाए, वह बीमार के पास बैठ कर नहीं, उन से अलग हो कर सिखाया जाए।

बहुत से बच्चों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दीन, दुखियों, बूढे तथा दुर्बल व्यक्तियों, और लंगड़े लूलों पर हंसते हैं। हो सकता है कि वे जान-बूझ कर ऐसा न करते हों, बल्कि खेल-खेल में हंस पड़ते हों। परन्तु माता पिता और शिक्षक-शिक्षिकाओं को चाहिये कि ऐसे अभागे व्यक्तियों के प्रति बच्चों के हृदय में दया व सहानुभूति पैदा करने की चेष्टा करें। दुःखी व पीड़ित लोग जरा-जरा सी बात पर रूठ जाते हैं। यदि उन की हंसी उड़ाई जाए, उन के प्रति घृणा प्रकट की जाए, उन को तुच्छ समझा जाए या उन की उपेक्षा की जाए, तो उन का दुःख बहुत अधिक बढ़ जाता है। दुर्भाग्य-

यद्य वे पहले ही इतने दुःखी होते हैं, इस पर यदि बड़े या बच्चे उन के साथ अनुचित व्यवहार करें, तो सोचिये जरा उन की क्या दशा होगी। बच्चों को सिखाइये कि ऐसे अभागे व्यक्तियों का बड़ा ख्याल रखना चाहिये और यही चेष्टा करनी चाहिये कि जहां तक हो, उन का दुःख कुछ कम हो।

वृद्धों तथा दीनों के प्रति आदर

जिन गरीबों के शरीर पर चिथड़े लगे होते हैं, वे तो स्वयं अपनी आखों में गिर जाते हैं, और असावधान बच्चे उन के दुःख को अधिक बढ़ा देते हैं। प्राय. दरिद्रता से संघर्ष करने वाला ही आगे चल कर बड़ा बनता है; और जो निर्दय होते हैं (या यूं कहिये कि जिन्हें जीवन में दुछ सिखाया नहीं जाता) वे जीवन में उन्नति नहीं कर सकते, जहां-तहां रह जाते हैं।

यदि माता-पिता बच्चों के सामने महानुभावों की कृतियों, उन की उदारता और उन के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करें, तो दिन प्रति दिन बच्चों के विचार बदलते जाएंगे।

ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि दया के अधिकार कार्य कुछ इस प्रकार हो जाते हैं कि स्वयं करने वाले तक को पता नहीं चलता। हृदय में दया उमड़ती है और कार्य रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार के कार्यों के लिये पहले से किसी तरह की तैयारी की आवश्यकता नहीं होती, न ही इन में किसी प्रकार का निजी लाभ होता है। इसीलिये तो दयामय कार्य सुन्दर होते हैं।

लोगों के हृदयों से उमड़ती हुई दया से घरों में, पाठशालाओं में, सम्प्रदायों और समाज में प्रसन्नता का जो संचार होता है, उस का अनुमान लगाना भी कठिन है। बच्चे सुख देने वाले निकलें या दुःख देने वाले, यह बात अधिकतर माता-पिता और शिक्षक-शिक्षिका पर निर्भर होती है।

राम स्वरूप के प्रमाण-पत्र

सोहन लाल और उसकी पत्नी दोनों बूढ़े हो चुके थे, पर थे बड़े भले लोग। जीवन भर वे दूसरों के दुःख संकट में काम आते रहे। किसी को कैसी ही तकलीफ क्यों न होती, वे उसे दूर करने का कोई-न-कोई उपाय अवश्य ढूंढ निकालते थे। अपने जान-पहचान के लोगों और पड़ोसियों की समझ में तो वे कभी-कभी उदारता की सीमा को पार कर जाते थे, क्योंकि वे अपनी आवश्यकता के पैसों से भी दूसरों की सहायता कर देते थे। लोग उन से कहते कि देखो भई, बुरे दिन आते देर नहीं लगती, जो पैसा तुम लोग दूसरों को दे देते हो, उस की तुम्हें भी कभी बड़ी आवश्यकता हो सकती है। परन्तु सोहनलाल उत्तर देता, "अपना विचार तो यह है कि जब तक हम दोनों जीते हैं, तब तक हमारे खेत काफी अन्न पैदा करते रहेंगे। हम जो कुछ दीन-दुःखियों को देते हैं, वह हम ईश्वर को उधार देते हैं, बुरे दिन आए, तो ईश्वर अपने-आप हमारा पेट भरेगा।"

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, सोहनलाल भी अधिक बूढ़ा होता गया और वह पहले की तरह अपने खेतों पर काम न कर सकता था। उसकी आमदनी घटने लगी, परन्तु खर्च ज्यों-का-त्यों रहा; और अंत में बुरे दिन आ ही गए। काम-काज तो चलाना ही था, इसलिये उसने एक हजार रुपये में बिमल चन्द साहूकार के पास अपना घर और अपने खेत गिरवी रख दिये।

हर साल सोहनलाल किसी-न-किसी तरह ब्याज चुकाता रहा। बिमल चन्द को यही चाहिये था, क्योंकि उसे मूल से ब्याज अधिक प्यारा था। परन्तु कुछ सालों बाद बिमल चन्द मर गया और काम-काज और लेन-देन उस के बेटे के हाथ में आ गया। बेटा बाप की तरह दयालु न था। कुछ ही महीने बाद उस ने सोनलाल को 'नोटिस' दे दिया कि यदि रहने का सारे का सारा रुपया महीने भर के अन्दर-अन्दर चुकती न हुआ, तो घर और खेतों पर कोई अधिकार न रहेगा। इस का सीधा मतलब यह था कि साहूकार हजार रुपये में ही सोहनलाल का घर और उस के खेत हड़प कर जाना चाहता था।

बिमल चन्द का घर कोई सौ मील दूर शहर में था। सोनलाल ने अपनी पत्नी से कहा कि मेरा जाना ही अच्छा होगा; हो सकता है मुंह-दर-मुंह बात करने से साहूकार का दिल पिघल जाय और हमें इस बुढ़ापे में घर से बेघर न होना पड़े।

R. Kakkar

"पर जाओगे कैसे ?" उसकी पत्नी चिन्तित हो कर बोली, "देह में जान नहीं, और इतनी दूर कभी गये नहीं।"

"यह तो ठीक है," सोहनलाल ने कहा, "पर चिट्ठी-पत्री से इतना काम नहीं चलेगा जितना बात-चीत करने से चल सकता है; और फिर पठानकोट ही में पीताम्बर दास भी रहता है, जब छोटा सा था तो हम ही उस के आड़े आए थे; देखें, वही कुछ सलाह दे या कुछ मदद कर दे।"

सोहन लाल ने कभी रेल का सफर नहीं किया था। उस की पत्नी को बड़ी चिन्ता हो गई। दूसरे दिन जब सोहनलाल बैलगाड़ी में बैठ कर स्टेशन की ओर चला तो उस की पत्नी पुचकार-पुचकार के कहने लगी, "देखना हर बात सम्भाल कर रहना।" सोहनलाल बार-बार यही कह देता—"हां, हां चिन्ता न कर।"

सोहनलाल गाड़ी में बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह चकरा उठा। सोचने लगा कि ऐसा न हो कि मैं यहीं बैठा रह जाऊं और पठानकोट निकल जाए।

उसने एक यात्री से पूछा, "क्यों भाई, पठानकोट कितनी दूर रह गया होगा ?"

जब उत्तर मिला कि अभी काफ़ी दूर है, तो वह कुछ शान्त हो गया और थोड़ी देर बाद लगा ऊंघने। किसी की आवाज़ से वह चौंक पड़ा। देखा तो पास खड़ा टिकट-चैकर टिकट मांग रहा है। सोहन लाल ने हड़बड़ा कर टिकट दिया और अपनी जगह से उठते हुए बोला, "क्या पठानकोट आ गया, बाबूजी ?" टिकट-चैकर मुस्कराया और टिकट वापस देते हुए बोला, "अजी अभी पठानकोट कहां, अभी दूर है, बैठे आराम करो।"

सोहनलाल बोला, "मुझे कैसे मालूम होगा, बाबूजी ? मैं तो कभी रेल में बैठा नहीं।"

टिकट-चेकर ने उत्तर दिया, "चिन्ता न कर बाबा, बहुत लोग बड़गांव में उतरेंगे, पता चल ही जाएगा।"

सोहनलाल से कुछ दूर पर दो युवक बैठे थे। उन्होंने उस की सारी बातें सुन ली थीं, उन में से एक की अवस्था यही कोई बीस वर्ष की होगी। था अच्छा छरहरे बदन का सजीला जवान, और उसका नाम था वेद प्रकाश। उसने झुक कर अपने साथी, मोहन के कान में कहा, "देख यार, मैं इस बुड्ढे को अगले स्टेशन पर चकमा देता हूं कि बड़गांव आ गया, जरा मजा रहेगा।"

सोहनलाल दिन भर का हारा-थका तो था ही, पड़ते ही खर्राटे भरने लगा। कुछ समय बाद गाड़ी की चाल मन्द पड़ने लगी, आगे कोई स्टेशन था। वेद प्रकाश ने चारों ओर निगाह दौड़ाई; यात्री पड़े सो रहे थे। वह उछल कर सोहनलाल के पास पहुंचा और उसका कंधा पकड़ कर हिलाते हुए बोला, "बाबा, बड़गांव उतरना है न ? उठ, स्टेशन आने ही वाला है।"

सोहनलाल हड़बड़ा कर उठ बैठा। डब्बे में बत्तियां जली हुई थीं। वह आंखें फाड़-फाड़ कर वेद प्रकाश का मुंह ताकने लगा; फिर उसने अपनी दोहर और लाठी सम्भाली। इतने में गाड़ी खड़ी हो गई। सोहनलाल जल्दी से उतर गया। कुछ दूर जा कर एक कुली से पूछा, "यह बड़गांव है न ?"

कुलीने उत्तर दिया, "बड़गांव अभी कई स्टेशन छोड़कर आएगा। तू यहां कहां उतर गया ?"

सोहन लाल घबरा गया। रात का समय था। जल्दी से पलटा, परन्तु इतने में गाड़ी चल दी, दौड़ती गाड़ी में चढ़े कैसे !

वेद प्रकाश ने जो सोहन लाल को बौखलाहट में दौड़ते देखा, तो हंसते-हंसते लोटपोट हो गया। साथी से बोला, "अरे यार बुड्ढा तो मेरे चकमे में आ ही गया ; मैं तो डर रहा था कि कहीं दरवाजे पर खड़े होकर किसी से पूछ लिया, तो बड़ी किरकिरी होगी। पर यार मजा आ गया; तो कहो फिर कैसी रही सूझ, एक दम फर्स्ट क्लास न ?"

मोहन ने इसकी हां में हां मिलाई।

उधर जिस जगह सोहन लाल बैठा था, उस जगह एक सज्जन आ कर बैठ गए थे; परन्तु वेद प्रकाश और मोहन दोनों की नजर उन पर न पड़ी। वे दोनों अपनी बातों में मस्त थे, और बातें भी इतनी जोर से कर रहे थे कि उन का एक-एक शब्द उस सज्जन को सुनाई दे रहा था।

"आ-हा-हा," वेद प्रकाश हंसता हुआ बोला, "पर यार, बुड्ढे को जरा संदेह न हुआ, वह तो निरा बुद्धू निकला, बुद्धू; मैं ने जो कहा, उसने मान लिया; भई खूब रही !"

उस के बाद दोनों युवकों की बात-चीत का विषय बदल गया।

"भई वेद," मोहन बोला, "मैं तुम्हें अभी बताए देता हूं, यह नौकरी तुम्हें मिलना बहुत कठिन है; कहते हैं कि पिताम्बर दास बड़ा 'परखैया' है !"

उसे जगाया, तो वह कैसा भयभीत होकर मुझे ताकने लगा; मैं बड़ी मुश्किल से अपनी हंसी रोक पाया। फिर कैसे हड़बड़ा कर नीचे उतर गया, और प्लैट-फार्म पर उस का बांवला कर इधर-उधर दौड़ना बड़ा ही मजेदार रहा, मैं ने तो कभी ऐसा तमाशा देखा नहीं था।"

उस सज्जन ने एक बार फिर वेद प्रकाश पर नजर डाली, परन्तु इस बार नजर में क्रोध था। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु कहते-कहते रुक गया।

उधर बेचारा सोहनलाल इधर-उधर स्टेशन पर पूछता फिरा कि दूसरी गाड़ी कब मिलेगी। मालूम हुआ कि गाड़ी सवेरे को मिलेगी। एक तो नई जगह, दूसरे रात का समय, तीसरे पैसों की तंगी—सोहनलाल को बड़ा दुःख हुआ। ठंडा सांस मार कर मन-ही-मन बोला "क्या करूं?" परन्तु अपना मन मार कर चुप हो रहा। रात काटने को तो उसने स्टेशन पर काटी, पर रही उसे बड़ी चिन्ता और बेचैनी। सवेरे को गाड़ी आई। लोग उतरने चढ़ने लगे। उसी समय एक शरीफ-सा नौजवान अपने पिता के साथ प्लैट-फार्म पर आया। उस के पिता ने कहा, "राम स्वरूप, उस बूढ़े आदमी को तो देखो, मालूम होता है कि उस ने कभी रेल का सफर नहीं किया, तुम चढ़ा दो उसे।"

राम स्वरूप सोहनलाल के पास जाकर बोला, "आइये, बाबाजी, मैं आप को चढ़ा दूं।"

उस ने सोहन लाल की बांह पकड़ कर उसे डब्बे में चढ़ा दिया और अन्दर आराम से बिठा कर अपने पिता को प्रणाम करने को दरवाजे पर आ खड़ा हुआ, गाड़ी चल दी। राम स्वरूप सोहन लाल के पास ही जा बैठा।

"जीते रहो बेटा," सोहन लाल राम स्वरूप से बोला, "बूढ़ा हो गया हूं, तुम ने मुझे पकड़ कर कितनी अच्छी तरह चढ़ा दिया; तुम कहां जाओगे, बेटा?"

"बड़गांव जा रहा हूं बाबाजी," रामस्वरूप बोला, "वहां एक बड़े आदमी हैं, उन्हें अपने दफ्तर में एक आदमी की जरूरत है, उसी के लिये जा रहा हूं, मेरा नाम स्वरूप है।"

"रामस्वरूप बेटा" सोहन लाल ने कहा, "तुम्हें वह नौकरी मिल जाएगी, तुम्हें मिलनी ही चाहिये, तुम जैसे नेक आदमी को कौन न चाहेगा। मैं भी बड़गांव ही जा रहा हूं, अच्छा हुआ तुम्हारा साथ हो गया, मैं ने कभी रेल का सफर नहीं किया। मुझे बिमल चन्द साहूकार के यहां जाना है पर मुझे यह भी नहीं मालूम कि वह रहता कहां है; रास्ते में मेरे साथ गड़बड़ हो गई मैं किसी और जगह पर उतर गया, और रात भर चिन्ता में कटी देखिये आगे क्या होता है।"

"अब चिन्ता न कीजिये, बाबाजी," रामस्वरूप उस पर तरस खाते हुए बोला, "मैं आप को उन का दफ्तर दिखा दूंगा; मैं कई बार बड़गांव जा चुका हूं।"

आधे घंटे में गाड़ी बड़गांव आ पहुंची। रामस्वरूप बूढ़े के साथ ही उतरा और धीरे-धीरे उसके साथ चलने लगा। स्टेशन से बाहर जाकर दो-तीन सड़कें पार करने के बाद राम स्वरूप एक जगह खड़ा हो गया और बोला, "लीजिये बाबाजी, यह है बिमल चन्दजी का दफ्तर।"

"बड़ी उमर हो बेटा," सोहन लाल बोला, "तुम ने बड़ी दया की मुझ पर। क्या तुम्हें पिताम्बर दास का घर भी मालूम है?"

"जी, घर तो मालूम नहीं, पर उनका दफ्तर जानता हूं," राम स्वरूप बोला, "मैं वहीं जा रहा हूं, उन्हीं के दफ्तर में एक जगह खाली है जिस के लिये मैं जा रहा हूं। दोराये के अगले मोड़ पर सब से पहले उन ही का दफ्तर है।"

सोहन लाल की दिलचस्पी बढ़ी; वह बोला, "बेटा मेरा दिल कहता है कि पिताम्बर दास मुझे अपने यहां रख लेगा। यदि तुम मुझ से पहले वहां पहुंच जाओ, तो पिताम्बर दास से कहना कि मैं सोहन लाल को जानता हूं।"

वे अलग हो गये, राम स्वरूप पिताम्बर दास के दफ्तर की ओर चल दिया और सोहन लाल विमल चन्द के दफ्तर की ओर। थोड़ी ही देर में राम स्वरूप दूसरे उम्मीदवार के साथ जा बैठा। वेद प्रकाश उस से कुछ ही पहले आया था। अन्दर अपने कमरे में पिताम्बर दास कुछ लिखने में व्यस्त था। इतने में नौकर ने आकर बताया कि एक बूढ़ा आदमी आप से मिलना चाहता है। पिताम्बर दास ने कहा कि अन्दर भेज दो। धीरे-धीरे सोहन लाल अन्दर पहुंचा।

"पहचानते हो मुझे पिताम्बर," उस ने कहा।

जानी-पहचानी आवाज सुनकर पिताम्बर दास अपनी कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़ कर सोहन लाल के हाथ अपने हाथों में लिये और बोला, "सोहन लालजी! आइये, आइये, सोहन लालजी, पधारिये, पधारिये, आप ने बड़ी कृपा की कि दर्शन दिये . . .।"

सोहन लाल के मुंह से पता चल रहा था कि वह बड़ी मुसीबत में है, इसलिए पिताम्बर दास ने बड़ी सावधानी से बातें करनी शुरू कीं।

"क्या बताऊं, भाई समय टेढ़ा आ गया और मुझे अपना घर और अपने खेत विमल चन्द के पास एक हजार रुपये में रहन रखने पड़े। जब तक विमल चन्द रहा, कोई तकलीफ न हुई, मैं साल-साल ब्याज देता रहा; पर उस के मरने के बाद उस का बेटा हाथ पैर फैलाने लगा। मुझे 'नोटिस' दिया कि यदि एक महीने के अन्दर-अन्दर रहन का सारा रुपया न पहुंचा, तो घर और खेतों से हाथ धोने पड़ेंगे। मैं ने सोचा चल कर उस से बात-चीत करूं। उस के पास गया था, पर वह इस समय कहीं बाहर गया हुआ है। फिर मैं ने सोचा चलूं, तुम से ही कुछ सलाह लूं।"

"सोहन लालजी," पिताम्बर बोला, "लगभग तीस वर्ष हुए मैं नंगा-भूखा था, मेरा इस संसार में कोई न था, आप ने ही मुझ पर तरस खाया था, मुझे सहारा दिया था, अपने पास रखा था, मेरा पेट भरा था, और फिर मुझे धंधा भी दिया था। आज मैं जो कुछ भी हूं, आप के सदके ही बना हूं। आप का मुझ पर बहुत बड़ा एहसान है, मैं उस का बदला कभी नहीं दे सकता। लो, आप अभी ही विमल चन्द के बेटे का सारा रुपया चुका दीजिये, मैं हुंडी लिखा देता हूं।"

बूढ़े सोहन लाल की आंखों से आंसू बहने लगे। वह बोला, "मैं ने ठीक ही तो कहा था कि यदि बुरे दिन आए भी, तो ईश्वर ही हमारा बेड़ा पार करेगा, उसने मेरी लाज रख ली।"

पास ही बाहर के कमरे में नौकरी के उम्मीदवार बैठे थे। वेद प्रकाश और राम स्वरूप जो किवाड़ के पास ही बैठे थे, उन्होंने पिताम्बर दास और बूढ़े सोहन लाल की सारी बातें सुनीं। वेद प्रकाश सोचने लगा

को अन्दर जाते देख कर ज़रा घबरा उठा था, परन्तु उस ने सोचा कि बूढ़े को दिखाई कम देता होगा, उस ने मुझे पहचाना भी नहीं।

चिताम्बर दास और सोहन लाल मुद्दत के बाद मिले थे, बातें होती रहीं। फिर चिताम्बर दास ने कहा, "बातें तो बहुत हैं, फुर्सत से होंगी, अब आप को घर चल कर आराम करना चाहिए; सौ मील का सफर आप को अखर गया होगा, आप थक गये होंगे। वैसे तो सफर में कोई तकलीफ नहीं हुई ?"

"अरे भई, पूछो मत," सोहन लाल बोला, "मुझे तो अब सोच कर भी दु:ख होता है। एक लड़के ने मुझे पता नहीं किस जगह उतार दिया; मुझे जगा कर कहने लगा कि बहगांव आ गया और मैं हड़बड़ा कर उतर गया। सारी रात वहीं पड़ा रहना पड़ा; पर अब सब ठीक हो गया।"

"बड़ी बुरी बात हुई", चिताम्बर दास बोला, "अच्छा, थोड़ी देर बैठिये अभी घर चलते हैं। बाहर कुछ लड़के बैठे हैं, नौकरी के लिये आए हुए हैं, ज़रा मैं उन से बात-चीत कर लूं।"

सूची में वेद प्रकाश और राम स्वरूप के नाम ही सब से पहले थे, चिताम्बर दास ने उन्हीं को अन्दर बुलवा लिया और बोला, "तुम लोग नौकरी के लिये आए हो, न ?"

दोनों लड़कों ने उत्तर दिया, "जी हां।"

चिताम्बर वेद प्रकाश की ओर मुड़ गया और बोला, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम वेद प्रकाश है, साहब। यह लीजिये मैं मान्य प्रेम दास जोशी, श्री मधु राव और डाक्टर अदारकर आदि से प्रमाण-पत्र लाया हूं।"

"मुझे इन्हें देखने की आवश्यकता नहीं, आपने ही पास रखो," चिताम्बर ने रूखेपन से कहा।

"और तुम्हारा नाम क्या, भई ?" राम स्वरूप की ओर मुड़ते हुए चिताम्बर ने पूछा।

"जी मेरा नाम रामस्वरूप है; मैं नौकरी कर के अपने माता-पिता की सहायता करना चाहता हूं; पर मेरे पास कोई प्रमाण-पत्र नहीं है।

यह सुनते ही सोहन लाल अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़ कर राम स्वरूप से बोला, "तुम में बहुत गुण हैं, बेटा, और क्या चाहिये।"

फिर सोहन लाल ने राम स्वरूप के शिष्ट व्यवहार और उसकी सहृदयता का पूर्ण वृतान्त कह सुनाया।

चिताम्बर दास ने वेद प्रकाश के चेहरे पर निगाहें जमा दी और बोला, "कल रात मैं भी उसी डब्बे में बैठा था जिस में बैठे तुम एक गरीब बूढ़े की बातें कर-कर के हंस रहे थे; एक अनजान बूढ़े आदमी को धोखा देकर, उसे परेशान कर के, खुश हो रहे थे। सोहन लाल जी, ज़रा देखिये तो सही यही है न वह लड़का जिस ने कल रात आप को धोखा दिया था ?"

सोहन लाल वेद प्रकाश के पास जाकर ध्यान से उसका चेहरा देखने लगा और फिर बोला, "यही है यह, यही है।"

चंद प्रकाश ने बहाने बनाने चाहे, परन्तु उस के शब्द उस के गले में अटक गये। वह घबराहट में कुछ भी न कह सका और प्रमाण-पत्रों को हाथ में लिये हुए झट पट बाहर निकल गया।

पीताम्बर दास ने राम स्वरूप से कहा, "हम खुशी से अपने दफ्तर में तुम्हें काम देते हैं। यदि तुम ने अच्छा काम किया तो, हम तुम्हें अच्छी तनख्वाह देंगे, तुम इसी समय से काम शुरू कर सकते हो। हमें तुम से बड़ी उम्मीदें हैं। दूसरे कमरे में जाकर बड़े बाबू से मिलो, वह तुम्हें तुम्हारा काम समझा देंगे।

इतना कहकर पीताम्बर दास ने रामस्वरूप को चपरासी के साथ अन्दर भेज दिया।

पीताम्बर दास ने उसी दिन बिमल चन्द के बेटे को एक हजार का चैक भिजवा दिया और इस प्रकार सोहन लाल के हृदय पर से एक बड़ा भारी बोझ उठ गया। वह दो दिन पीताम्बर दास के यहां रहा और पीताम्बर दास ने हर प्रकार से उस का सेवा-सत्कार किया। जाते समय सोहन लाल को उस की पत्नी के लिये नए-नए कपड़े और कुछ रुपए भेजे और कहला भेजा कि मैं आप का भी बहुत उपकार मानता हूं।

चंद प्रकाश को तो दिल्ली में एक नौकरी मिल गई, परन्तु झूठ, कपट, धोखे-बाजी और दूसरों को अपने आपने में कुछ न समझने के कारण, वह भी छूट गई। इसी प्रकार चार दिन यहां काम करता, पर वह अपनी मक्कारी से बाज न आया।

उधर राम स्वरूप अपने काम, ईमानदारी सच्चाई और उदारता के कारण सब की आंखों में चढ़ गया। वह पीताम्बर दास का दाहिना हाथ हो गया, पीताम्बर दास ने सारी जिम्मेदारियां उस पर छोड़ दीं, और वह बढ़ते-बढ़ते एक दिन पीताम्बर दास का साझी बन गया।

S. R. Shinde

S. Azad

मानसिक शुद्धता के प्रति सीख

फूल उगाने के लिए फुलवारी है।''

''मन अनाज भरने के लिए खत्ती नहीं,

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक जॉन बनियन की अद्भुत कृति Pilgrim's Progress अर्थात् यात्रा-स्वप्नोदय में बड़े ही अनोखे-अनोखे तथा शिक्षा-प्रद दृष्टान्त हैं। लेखक ने एक स्थान पर यह दृश्य प्रस्तुत किया है कि मसीही यात्री एक अंधेरी घाटी में से गुजर रहा है; एक बहुत ही तंग मार्ग पर चल रहा है; मार्ग के एक ओर गहरी खाई है और दूसरी ओर दलदल; रास्ता ऊबड़-खाबड़ है; जगह-जगह पर गड्ढे हैं; पास ही नरक का द्वार है; जहां-जहां पड़े हुए उन यात्रियों के शव हैं, जो इस मार्ग पर चले, पर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने से पहले ही लड़खड़ा-लड़खड़ा कर गिर पड़े, और फिर न उठे।

माताओं व पिताओं, यदि आप के बालक को अकेला इस मार्ग पर चलना पड़ता, तो आप क्या करते? क्या आप उस के सहायक होते? क्या उसके मार्गदर्शन करते? क्या आप पग-पग पर उन्हें चेतावनी देते चलते? क्या आप उसे बताते कि हम इस मार्ग पर चल चुके हैं, हमें मालूम है, कि रास्ता कहां-कहां खतरनाक है और कहां-कहां आदमी ठोकर खा सकता है—देखो सावधान, इन सब खतरों से बचते चलो? या फिर आप यह कह देते कि भई रास्ता है तो खतरनाक, पर तुम चल पड़ो, जाओ, पार कर ही लोगे?

मनुष्य का यौन-जीवन भी ऐसी ही एक घाटी है; पग-पग पर दलदलें हैं, गड्ढे हैं और तरह-तरह के खतरे हैं; परन्तु फिर भी बहुत से माता-पिता अपनी संतान को बिना कुछ सिखाए-समझाए इस घाटी में प्रवेश करने देते हैं, और इन अनाड़ियों से, जिन्हें जीवन का कोई भी अनुभव नहीं होता, यह आशा रखते हैं कि सफलतापूर्वक घाटी पार कर ही लेंगे। फलतः कितनी जिन्दगियां इस बीहड़ रास्ते में बरबाद हो जाती हैं।

अपनी संतान का मार्गदर्शन कीजिए

जब कि माता पिता बहुत हद तक अपने बच्चों का मार्गदर्शन कर सकते हैं, तो आख़िर वह आपत्ति मोल क्यों लें? वे अपनी संतान को आवश्यक सीख दे सकते हैं; अच्छी तरह उन की सहायता कर सकते हैं, और बच्चे बेखटके यह घाटी पार कर सकते हैं। इस प्रकार संतान जीवन भर अपने माता पिता की आभारी रहती है और स्वयं माता-पिता बनने पर अपनी संतान का मार्गदर्शन उसी प्रकार करती है।

बहुत से माता-पिता तो बस यही कह कर अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं कि लड़का है, इसे क्या बताएं, और कुछ बताएं भी, तो कैसे? परन्तु ईश्वर न करे, जीवन के इस विकट मार्ग में आप की लापरवाही से आप की संतान को कोई ऐसी-वैसी बात हो गई, तो क्या आप तसल्ली से बैठ सकेंगे?

जीवन के तथ्य बताइए

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सब से बढ़िया साधन है 'Love's Way'* अर्थात् 'प्रेम-मार्ग' नामक पुस्तक में यह बात बताई गई है कि इस संसार में प्रत्येक जीवधारी की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। लेखक ने बीजों, फूलों, मछलियों और पक्षियों आदि की उत्पत्ति और उन के प्रजनन की बड़े ही रोचक तथा सुबोध ढंग से विवेचना की है। इस पुस्तक द्वारा बच्चों पर प्रत्येक प्राणधारी की उत्पत्ति का रहस्य खुल जाता है।

जब बच्चा छोटा ही हो, तभी शिक्षा आरम्भ कर दीजिए

प्रत्येक माता को और प्रत्येक पिता को चाहिए कि अपने छोटे-छोटे बच्चों को प्रकृति का अध्ययन करना सिखाएं। प्रकृति-जगत् में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें तीन-चार वर्ष का बालक भली-भांति समझ सकता है। बच्चों को फूल, पौधे, पेड़, पक्षी तथा समस्त प्रकृति दिखाइए, और प्रकृति की एक-एक वस्तु के प्रति उन के हृदयों में प्रेम उत्पन्न कीजिए। उन्हें समझाइए कि ईश्वर ने ही हमें यह सब कुछ दिया है कि हमें उन से सुख व सहायता प्राप्त हो। जहां तक सम्भव हो, माता-पिता को अधिकाधिक पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए, न केवल आवश्यक विषयों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए, वरन् इसलिए भी कि उन्हें अधिकाधिक ऐसे सरल व सुबोध शब्द आ जाएं जिन के द्वारा बच्चों को गूढ़तम बातें समझाना आसान हो जाए। यदि शिक्षण का यह कार्य बालक के तीन वर्ष का हो जाने पर ही आरम्भ कर दिया जाए, तो काम सरल भी होता है और स्वाभाविक

*यह पुस्तक अंग्रेज़ी में है, और इस का लेखक A. W. Spalding बाल शिक्षा का प्रकाण्ड पंडित है। यह पुस्तक The Oriental Watchman Publishing House, Post Box 35, Poona 1. से मिल सकती है।

भी। बच्चों को फूलों, पक्षियों और तितलियों के विषय में संक्षेप में कुछ बताइए। बच्चे इस प्रकार की शिक्षा में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इस मे इस बात की प्रतिक्षा न कीजिए कि बालक प्रश्न करे, तो उत्तर दिया जाए; जैसे, इन्द्र-धनुष के सम्बन्ध में इस बात की आवश्यकता नहीं कि जब बालक पूछे कि इस में कितने रंग हैं, तभी बताया जाए. स्वाभाविक रीति यह होगी कि आप बिना प्रश्न के प्रतीक्षा किए, आवश्यक बातें बता दीजिए। हां, जब बालक अपने नन्हे-मुन्ने भाइयों के विषय में कुछ जानना चाहे, तो यह आवश्यक होगा कि उस के प्रश्नों की प्रतीक्षा की जाए; जिस-जिस बात को वह पूछे, वही-वही बात उसे बता दी जाए। परन्तु बहुधा ऐसा भी होता है कि बच्चों को बहुत सी बातें "इधर-उधर से" मालूम हो जाती हैं, और फिर वे उन बातों के विषय में अपने माता-पिता से कोई प्रश्न नहीं करते। एक लेखक का मत है कि बच्चों को आवश्यक बातों की जानकारी कराने में दस मिनट की भी देर करने की अपेक्षा अधिक अच्छा होगा कि आवश्यकता से कई वर्ष पूर्व ही उन्हें ये बातें बता दी जाएं। यदि गली-बाजार में सुन कर या नौकरों से सीख कर बालक अश्लील प्रकार का यौन-ज्ञान प्राप्त कर ले, तो बेहतर होगा कि उस से साफ-साफ बातें की जाएं, और अश्लीलता दूर करने का प्रयत्न किया जाए। ऐसी अवस्था में सुधार का यह कार्य न तो सरल होता है और न ही संतोषजनक, परन्तु फिर भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। किसी-न किसी अंश तक अश्लीलता दूर करने में बालक का अवश्य ही सहायक होगा। यदि परिणाम इच्छानुसार हो, तो आप अपना प्रयत्न दुगना-तिगना कर दीजिए।

घबराहट और उलझन से बचाए

जब आप बच्चे को शिक्षा दे रहे या रही हो, तो न तो बच्चे ही में किसी प्रकार की घबराहट, झिझक और उलझन पैदा होने पाए, और न आप ही में। अपनी शिक्षा और अपने उपदेश में "यथार्थ, दैनिक तथा साधारण बातों" को सम्मिलित करते या करती चलिए—बच्चे के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दीजिए; पर, हां, केवल उतनी ही बात बताइए जितनी की आवश्यकता हो, और याद रखिए कि आप के उत्तरों में झूठ, धोखा और टाल-मटोल न हो। यदि आप ने अपने बच्चे से किसी प्रकार की टाल-मटोल की, गप हांकी, झूठ बोला या आधी सच्ची और आधी झूठी बात बताई, तो यह कल्पना भी न कीजिए कि वह आप को अपना विश्वास-पात्र बनाएगा, कदापि नहीं। उस की जिज्ञासा की तृप्ति कीजिए। बहुत लोग इस बात को बुरा समझते हैं कि बच्चा अपने कौतूहल को प्रकट करे; परन्तु कौतूहल इस बात का द्योतक है कि बालक में जानने और सीखने की प्रबल इच्छा है। उस के साथ कोई ऐसा व्यवहार न कीजिए कि वह यह समझ ले कि मेरा प्रश्न पूछना कोई बुरी बात है। साथ-ही-साथ अपनी ओर से किसी प्रकार बालक में कौतूहल उत्पन्न भी न कीजिए। यदि बालक किसी बात को जानना चाहता है, तो साधारण रीति से बता दीजिए। उन के प्रश्नों के उत्तर देने में हड़बड़ी न कीजिए, धीरे-धीरे बताइए। साधारणतया ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने में थोड़ा समय लगाइए, क्योंकि बालक जितना बड़ा होता जाएगा, उतनी ही आसानी से इन बातों को समझता जाएगा।

अपनी संतान का मार्गदर्शन कीजिए

जब कि माता-पिता बहुत हद तक अपने बच्चों का मार्गदर्शन कर सकते हैं, तो अंधेरे का आलंबन क्यों लें ? वे अपनी संतान को आवश्यक सीख दे सकते हैं; अच्छी तरह उन की सहायता कर सकते हैं, और बच्चे बेखटके यह घाटी पार कर सकते हैं। इस प्रकार संतान जीवन भर अपने माता-पिता की आभारी रहती है और स्वयं माता-पिता बनने पर अपनी संतान का मार्गदर्शन उसी प्रकार करती है।

बहुत से माता-पिता तो बस यही कह कर अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं कि लड़का है, इसे क्या बताएं, और कुछ बताएं भी, तो कैसे ? परन्तु ईश्वर न करे, जीवन के इस विकट मार्ग में आप की लापरवाही से आप की संतान को कोई ऐसी-वैसी बात हो गई, तो क्या आप तसल्ली से बैठ सकेंगे !

जीवन के तथ्य बताइए

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सब से बढ़िया साधन है 'Love's Way'* अर्थात् 'प्रेम-मार्ग' नामक पुस्तक में यह बात बताई गई है कि इस संसार में प्रत्येक जीवधारी की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। लेखक ने बीजों, फूलों, मछलियों और पक्षियों आदि की उत्पत्ति और उन के प्रजनन की बड़े ही रोचक तथा सुबोध ढंग से विवेचना की है। इस पुस्तक द्वारा बच्चों पर प्रत्येक प्राणधारी की उत्पत्ति का रहस्य खुल जाता है।

जब बच्चा छोटा ही हो, तभी शिक्षा आरम्भ कर दीजिए

प्रत्येक माता को और प्रत्येक पिता को चाहिए कि अपने छोटे-छोटे बच्चों को प्रकृति का अध्ययन करना सिखाएं। प्रकृति-जगत् में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें तीन-चार वर्ष का बालक भली-भांति समझ सकता है। बच्चों को फूल, पौधे, पेड़, पक्षी आदि समस्त प्रकृति दिखाइए, और *प्रकृति की एक-एक वस्तु के प्रति उन के हृदयों में प्रेम उत्पन्न कीजिए। उन्हें समझाइए कि ईश्वर ने* ही हमें यह सब कुछ दिया है कि हमें उन से सुख व सहायता प्राप्त हो। जहां तक संभव हो, माता-पिता को अधिकाधिक पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए, न केवल आवश्यक विषयों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए, वरन् इसलिए भी कि उन्हें अधिकाधिक ऐसे सरल व सुबोध ढंग आ जाएं जिन के द्वारा बच्चों को गूढ़ बातें समझाना आसान हो जाए। यदि शिक्षा का यह कार्य बालक के तीन वर्ष का हो जाने पर ही आरम्भ कर दिया जाए, तो काम सरल भी होता है और स्वाभाविक

*यह पुस्तक अंग्रेजी में है, और इस का लेखक A. W. Spalding यौन-शिक्षा का प्रकांड पंडित है। यह पुस्तक The Oriental Watchman Publishing House, Post Box 35, Poona 1. से मिल सकती है।

भी। बच्चों को फूलों, पक्षियों और तितलियों के विषय में संक्षेप में कुछ बताइए। बच्चे इस प्रकार की शिक्षा में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इस में इस बात की प्रतिक्षा न कीजिए कि बालक प्रश्न करे, तो उत्तर दिया जाए; जैसे, इन्द्र-धनुष के सम्बन्ध में इस बात की आवश्यकता नहीं कि जब बालक पूछे कि इस में कितने रंग हैं, तभी बताया जाए. स्वाभाविक रीति यह होगी कि आप बिना प्रश्न के प्रतीक्षा किए, आवश्यक बातें बता दीजिए। हां, जब बालक अपने नन्हें-मुन्ने भाइयों के विषय में कुछ जानना चाहे, तो यह आवश्यक होगा कि उस के प्रश्नों की प्रतीक्षा की जाए; जिस-जिस बात को वह पूछे, वही-वही बात उसे बता दी जाए। परन्तु बहुधा ऐसा भी होता है कि बच्चों को बहुत सी बातें "इधर-उधर से" मालूम हो जाती हैं, और फिर वे उन बातों के विषय में अपने माता-पिता से कोई प्रश्न नहीं करते। एक लेखक का मत है कि बच्चों को आवश्यक बातों की जानकारी कराने में दस मिनट की भी देर करने की अपेक्षा अधिक अच्छा होगा कि आवश्यकता से कई वर्ष पूर्व ही उन्हें ये बातें बता दी जाएं। यदि गली-बाजार में सुन कर या नौकरों से सीख कर बालक अश्लील प्रकार का यौन-ज्ञान प्राप्त कर ले, तो बेहतर होगा कि उस से साफ-साफ बातें की जाएं, और अश्लीलता दूर करने का प्रयत्न किया जाए। ऐसी अवस्था में सुधार का यह कार्य न तो सरल होता है और न ही संतोषजनक, परन्तु फिर भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। किसी-न किसी अंश तक अश्लीलता दूर करने में बालक का अवश्य ही सहायक होगा। यदि परिणाम इच्छानुसार हो, तो आप अपना प्रयत्न दुगना-तिगना कर दीजिए।

घबराहट और उलझन से बचिए

जब आप बच्चे को शिक्षा दे रहे या रही हों, तो न तो बच्चे ही में किसी प्रकार की घबराहट, झिझक और उलझन पैदा होने पाए, और न आप ही में। अपनी शिक्षा और अपने उपदेश में "यथार्थ, दैनिक तथा साधारण बातों" को सम्मिलित करते या करती चलिए—बच्चे के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दीजिए; पर, हां, केवल उतनी ही बात बताइए जितनी की आवश्यकता हो, और याद रखिए कि आप के उत्तरों में झूठ, धोखा और टाल-मटोल न हो। यदि आप ने अपने बच्चे से किसी प्रकार की टाल-मटोल की, गप हांकी, झूठ बोला या आधी सच्ची और आधी झूठी बात बताई, तो यह कल्पना भी न कीजिए कि वह आप को अपना विश्वास-पात्र बनाएगा, कदापि नहीं। उस की जिज्ञासा की तृप्ति कीजिए। बहुत लोग इस बात को बुरा समझते हैं कि बच्चा अपने कौतूहल को प्रकट करे; परन्तु कौतूहल इस बात का द्योतक है कि बालक में जानने और सीखने की प्रबल इच्छा है। उन के साथ कोई ऐसा व्यवहार न कीजिए कि वह यह समझ ले कि मेरा प्रश्न पूछना कोई बुरी बात है। साथ-ही-साथ अपनी ओर से किसी प्रकार बालक में कौतूहल उत्पन्न भी न कीजिए। यदि बालक किसी बात को जानना चाहता है, तो साधारण रीति से बता दीजिए। उस के प्रश्नों के उत्तर देने में हड़बड़ी न कीजिए, धीरे-धीरे बताइए। साधारणतया ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने में थोड़ा समय लगाइए, क्योंकि बालक जितना बड़ा होता जाएगा, उतनी ही आसानी से इन बातों को समझता जाएगा।

कुछ बच्चे चुप्पी होते हैं; परन्तु अधिकांश बालक बकवादी होते हैं और कुछ ऐसे मुंह-फट कि जो कुछ मालूम हुआ मन में आने पर कहीं भी और किसी के सामने भी उगल दिया। इसलिए जब कभी यौन सम्बन्धी बातों को समझाने के लिए सब कुछ खोल-खोल कर बताना पड़े, तो ये गुप्त बातें केवल माता या पिता और बालक के बीच ही रहें; और बालक को समझा दिया जाए कि उन बातों को किसी और के सामने न कहे क्योंकि ये वैयक्तिक बातें हैं और अन्य लोगों से यही और पूछी नहीं जातीं। बालक को स्पष्ट रूप से बता दीजिए कि जब कभी तुम्हें इस प्रकार की कोई बात जाननी हो, तो सीधे हमारे पास आया करो, हम तुम्हें ठीक-ठीक बता देंगे।

प्रस्तुत विषय की आवश्यक बातों की जानकारी कराए बिना बालक को पाठशाला भेजना खतरे से खाली नहीं। शिक्षक-शिक्षिकाएं तो बच्चों के मन को शुद्ध रखने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु कौन जाने कि घर से पाठशाला तक आते-जाते समय क्या कुछ हो जाए। बच्चों का शत्रु सदा इस ताक में रहता है कि कब अवसर मिले और कब इन भोले मन में पाप के बीज बोए जाएं।

किशोरावस्था का खतरनाक समय

अपनी संतान की भलाई चाहने वाले माता-पिता अपने बच्चों की अवस्था बढ़ने के साथ-साथ उन्हें भले-बुरे की सीख देते चलते हैं। लड़कियों को दी जाने वाली आवश्यक सूचनाओं के विषय में बहुत कुछ वाद-विवाद किया गया है और बहुत कुछ लिखा जा चुका है, परन्तु लड़के को किशोर अवस्था में क्या-क्या जानना आवश्यक है, इस की ओर तुलनात्मक रूप से बहुत कम ध्यान दिया गया है। यह बात बहुत आवश्यक है कि लड़कों और लड़कियों दोनों ही को बता दिया जाए कि १० से १६ वर्ष की अवस्था में अपने को किस प्रकार संभाल कर और बचा कर रक्खें। लड़के-लड़कियां किशोर अवस्था में अपने को जिस प्रकार रक्खेंगे, उसी प्रकार भावी जीवन में उन का शारीरिक मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्रभावित होगा। शरीर के भावी परिवर्तनों के विषय में उन्हें सूचित और तैयार रखना चाहिए। बहुत सी लड़कियों का स्वास्थ्य केवल इसलिए नष्ट हो गया है कि उन की माताओं ने उन के शारीरिक परिवर्तनों के विषय में यह कभी न बताया कि ऐसा क्यों होता है और कैसा क्यों होता है। पिताओं और माताओं दोनों ही को इस विषय का अध्ययन करना चाहिए और यह जानना चाहिए कि अपने लड़के को इस प्रकार की नाजुक बातें और उन के कारण किस प्रकार समझाएं। आश्चर्य की बात है कि बहुत से पिता इस विषय में कुछ करना ही नहीं चाहते।

हस्तमैथुन का विस्तृत प्रसार

हस्तमैथुन की बुरी और गन्दी आदत स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है और शरीर अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। यदि माता-पिताओं को यह बात मालूम हो जाए कि यह आचार भ्रष्ट करने वाली आदत किस व्यापक रूप से फैली हुई है, तो कदाचित् उन की आंखें खुल जाएं। एक स्कूल में चार

L. R. Shultze

WHO

सौ लड़के थे। उन में से केवल सात ऐसे थे जिन्हें उन के माता-पिता ने मानसिक शुद्धता के प्रति सीख दे रक्खी थी, शेष सब-के-सब हस्तमैथुन की गन्दी आदत के शिकार बन चुके।

एक लेखक का कहना है कि कुछ समय पूर्व कुछ देशों की लगभग सभी लड़कियों में यह बुरी आदत पाई जाती थी। एशियाई देशों में यह बीमारी बहुत काफी फैली हुई है★। अतः छुटपन से ही लड़के-लड़कियों को इस से बचाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। कभी-कभी इस लत का इलाज बहुत ही छोटी अवस्था में आवश्यक हो जाता है।

इस आदत का कारण दूर कीजिए

इस का एक कारण तो है बहुत ही ढीले-ढाले या बहुत ही तंग, या रगड़ से शरीर में खुजली पैदा कर देने वाले कपड़ों का प्रयोग। कभी-कभी दुराचारी नौकरानी या बद-चलन संगी-साथी भी इस का कारण बन जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चों की देख-रेख में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। उन की प्रत्येक बात को देखते-भालते रहना चाहिए। इस बात का बड़ा ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के नन्हे-नन्हे हाथ ऐसी-वैसी जगह न चले जाएं, छुटपन से ही उन्हें हाथों को "पवित्र" रखना सिखाइए।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन का मत है कि हस्तमैथुन से कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती, केवल माता-पिता और बच्चों को डराए रखने के लिए बढ़ा-चढ़ा कर हानियां बनाई जाती हैं। परन्तु यह एक गन्दी आदत है जो बच्चों के मन को शरीर के उस अंग पर रखती है जिस के विषय में सोचना भी उन के लिए उचित नहीं और जिस से मस्तिष्क में गन्दगी ही गन्दगी भर जाती है। इन के अतिरिक्त डाक्टरों का मत है कि हस्तमैथुन हानिकारक है; यदि महीनों और सालों तक बराबर किया जाए, तो भयंकर परिणाम होते हैं—किसी कार्य को तुरन्त आरम्भ कर डालने की क्षमता जाती रहती है, शारीरिक बल घट जाता है, और अन्य मानसिक तथा नैतिक गुणों में कमी होने लगती है। इस अश्लील लत के कारण बालक के चेहरे पर लानत बरसने लगती है, उस के चलने के ढंग में भद्दापन आ जाता है और वह अपने संगी-साथियों के सामने आकर बहुत देर तक उन से आंखें नहीं मिला पाता। कुछ अंश में मानसिक सतर्कता भी जाती रहती है और निस्संदेह वह अपने आत्म-सम्मान को खो बैठता है।

स्वास्थ्य तथा संयम पर व्याख्यान करने वाले एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति का परामर्श है—"छुटपन से ही अपने बच्चों को मानसिक शुद्धता का पाठ पढ़ाइए। जितनी जल्दी हो सके, माताएं अपनी संतान के मनों में शुद्ध विचार ठूस-ठूस कर भर दें। इस के लिए बच्चों के वातावरण को शुद्ध रखिए। माताओ, यदि आप चाहती हैं कि हमारी संतान का मन पवित्र व शुद्ध रहे, तो उन के सोने के कमरे

★इस में मत-भेद हो सकता है; कम-से-कम भारत में इन के आंकड़े अपेक्षाकृत कम मिलेंगे, फिर भी सावधानी आवश्यक है—अनुवादक।

को साफ़-सुथरा रखिए। उन्हें अपने-अपने कपड़ों को संभाल कर रखना सिखाइए। कपड़े-लत्ते रखने के लिए प्रत्येक बालक का एक अलग स्थान होना चाहिए। औसत दर्जे के बहुत कम माता-पिता ऐसे होंगे जो अपने प्रत्येक बच्चे को कपड़े रखने के लिए एक अलग बक्स या ट्रंक न दे सकते हों। ट्रंक में कपड़े अच्छी तरह रखे जाएं और ऊपर सुन्दरता से कोई कपड़ा डाल दिया जाए।

"नियमितता की आदत डालने में प्रत्येक दिन कुछ-न-कुछ समय तो अवश्य लगाना पड़ेगा, परन्तु यह समय व्यर्थ न जाएगा, आगे चल कर माता को अपने प्रयत्नों का अच्छा फल मिलेगा . . . .

"बच्चों को प्रति दिन स्नान कराने का प्रबन्ध रखिए। स्नान के बाद ही तौलिए से शरीर को जोर-जोर से इतनी देर रगड़ा जाए कि वह फिर दमक उठे।"

यूरोप के किसी नगर में कंगालों की बस्ती में एक लड़की रहती थी। नगर के एक चौक में एक यूनानी लड़की की संगमर्मर की मूर्ति खड़ी थी। एक दिन उस मूर्ति को देख लिया। वह उस की ओर इतनी आकर्षित हुई कि घंटों खड़ी उसे ताकती रही। फिर वह अपनी झोंपड़ी में चली गई। अगले दिन वह फिर उस मूर्ति के पास जा खड़ी हुई। आज उस ने अपना मुंह धोकर पहले की अपेक्षा अधिक उजला कर रखा था। वह प्रति दिन उस मूर्ति के पास जाने लगी, और प्रति दिन उसका चेहरा निखरने लगा, यहां तक कि एक दिन उस का चेहरा भी मूर्ति के चेहरे की भांति उज्ज्वल हो गया। कितना सुन्दर, और कितना स्थायी प्रभाव था।

एक बुरी आदत छुड़ाना

जो माता-पिता अपने बालक से हस्तमैथुन की गन्दी आदत छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे हों, उन्हें बालक से इस विषय पर बात-चीत करनी चाहिए। उसे बताइए कि यह पाप है, इस से बहुत हानि पहुंचती है, बड़ी गन्दी बात है। परन्तु इस बात का ध्यान रखिए कि उसे इतना लज्जित न किया जाए कि वह आत्म-सम्मान ही खो बैठे। इस काम में बालक का सहयोग प्राप्त कीजिए। सफाई की आदत पर जोर दीजिए। उस का पेट साफ रखना चाहिए, इस का अर्थ यह होगा कि दिन भर में एक-दो बार अवश्य मल-त्याग होता रहे। मूत्राशय को जितनी बार खाली किया जाए, उतना ही अच्छा। बालक को बिना मिर्च-मसाले का भोजन दीजिए, रात को भोजन हल्का होना चाहिए। उस के सोने का कमरा जहां तक संभव हो ठण्डा रहे और ज्यादा हवादार रहे। इस का ध्यान रखिए कि उसे लंगोटा आदि न लगाएं, उस के कपड़े शरीर में खुजली न पैदा कर दें और ओढ़ने को काफी कपड़ा हो। उस के मन और हाथों को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखिए। बेहतर होगा कि रात को उस समय तक सोने न जाए, [illegible] उसे सिखाइए कि इस गन्दी आदत को छोड़ने में ईश्वर से सहायता पाने के लिए प्रार्थना करे।

यह गम्भीर बात है

हम तो यही चाहते हैं कि संसार भर के माता-पिताओं को पुकार-पुकार के सुनाएं और यह बात उन के हृदयों में उतार दें कि अपने पुत्र-पुत्रियों को इस प्रकार की सीख दीजिए कि वे एक दूसरे के लिए योग्य व उचित साथी बन सकें। कहा जाता है कि आज-कल लज्जा बहुत कम रह गई है। यदि लज्जा कम रह गई तो मन की पवित्रता तो और भी कम हुई। एक प्राचीन ग्रंथ में लिखा है—"धन्य हैं वे जिन के मन शुद्ध हैं क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे।" अतः इस का उलटा यह हुआ कि जो मन के शुद्ध नहीं वे परमेश्वर को नहीं देख पाएंगे। तो क्या हम अपनी संतान को एक दूसरे से गन्दी बातें करते देख सकते हैं ? परन्तु क्या इस बात का दोष संतान के सिर थोपना उचित होगा, जब कि हम उन्हें यह न सिखाएं कि उचित क्या है और अनुचित क्या ?

मनोविज्ञान के पंडितों और चिकित्सकों के मतानुसार जन्म के समय शिशु सर्वथा ज्ञान-रहित होता है। फिर धीरे-धीरे वह सब कुछ सीखता जाता है। इस मामले में माता-पिता की जिम्मेदारी बहुत बड़ी होती है। माना कि बालक दूसरों से, पुस्तकों से, सुन कर और देख कर बहुत कुछ सीखता है, परन्तु यह दायित्व ईश्वर ने माता-पिता को सौंपा है कि देखते रहें कि प्रत्येक बालक केवल उन्हीं बातों को सीखे जो उस की मानसिक तथा शारीरिक स्वच्छता को सुरक्षित रखने के लिए परम आवश्यक हों और जिन के द्वारा वह अपने प्यार करने वालों के सुख की रक्षा कर सके।

कदाचित् माता-पिता सोचते हों कि हमारे बच्चे और युवक-युवतियां दूसरों को देख कर और दूसरों की बातें सुन कर कुछ सीख लेंगे। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि वे दूसरों में देखते क्या हैं ? वे बहुधा ऐसी बातें देखते और सुनते हैं जो उन के लिए हानिकारक सिद्ध होती हैं, लाभदायक नहीं।

अपने को अपनी संतान का विश्वास-पात्र बनाइए

अपने को अपने बालक का विश्वास-पात्र बनाए रखिए। इस बात में भी माता कहती है—"मुझ पर विश्वास नहीं है।" प्रश्न उठता है कि उस का भरोसा आप पर से किस प्रकार चला गया ? क्या आप कहेंगी, "मुझ पर था ही नहीं ?" परन्तु था। जब बालक भूखा था तो उस ने किस को पुकारा था ? जब वह गिर पड़ा था, और उस के चोट लग गई थी, तो किस के पास दौड़ कर आया था ? जब वह छोटा था तो अपने दुःख में सुख प्राप्त करने के लिए किस के पास आता था ? जब कुछ जानना चाहता था, तो किस से प्रश्न पर प्रश्न करता था ? क्या उस समय उसे आप पर विश्वास नहीं था ? भरोसा नहीं था ? यह ईश्वर की योजना थी; उस ने ही माता-पुत्र के बीच ऐसी व्यवस्था स्थापित की थी। तो फिर आप पर से उस का भरोसा कहां और कैसे जाता रहा ?

T. N. Nagaraja

हो सकता है कि किसी दिन आप अपना वायदा पूरा न कर सकी हों। शायद उस ने आप से कोई बात चुपके से कही हो और आप से प्रार्थना की हो कि किसी और से न कहिएगा, परन्तु आप शायद भूल गई और आप ने वह बात किसी और से कह दी। शायद उसी अवसर पर उस ने भी अपने मन में यही कहा जो किसी और लड़के ने चिल्ला कर अपनी माता से कहा था—"जब तक जीऊंगा, मैं आप से फिर कभी अपनी कोई गुप्त बात नहीं कहूंगा।" कहीं आप के बालक का भी तो यही हाल नहीं? क्या विचार है आप का? या हो सकता है कि जब वह बहुत छोटा था, वह गिर पड़ा हो और उसके सिर में गुमटा उठ आया हो और दुःख से पीड़ित हो, वह आप की ओर दौड़ा हो, वह अपनी चोट की ओर आप का अधिक ध्यान आकर्षित कराने की चेष्टा करता ही रह गया हो, क्योंकि यह बात सभी लड़के-लड़कियों में समान रूप से पाई जाती है; वे पीड़ित होने पर मा की समीपता चाहते हैं। शायद आप अन्त में झल्ला कर बोली हों—"अब नन्हें बच्चे न बनो, कोई अधिक चोट नहीं लगी है; काम में मेरे हाथ हैं, यह करूं या तुम्हें देखूं?"

विश्वास किस प्रकार जाता रहता है

निम्न घटना एक छोटे से बालक के जीवन से सम्बन्धित है। शायद वह भी उतना ही छोटा होगा जितना आप का बालक उस समय था जिस समय उस का भरोसा आप पर से उठने लगा हो। उस बालक की उंगली में चोट लग गई थी, घाव ऐसा गहरा न था; उस की मां चाहती तो उसे बातों-बातों में एक शिक्षिका की भांति वीरता का पाठ पढ़ा देती। चोट तो मामूली थी, परन्तु बच्चा उस की ओर अपनी माता का अधिक ध्यान आकर्षित कराना चाहता था। मां ने तब आकर कहा—"अच्छा, तो क्या करूं?"

बालक ने उत्तर दिया—"आप और कुछ नहीं तो, 'आह' तो कह सकती थीं!"

बहुधा जरा सा दुलार दिखाने से बच्चे की पीड़ा बिल्कुल दूर हो जाती है। अतः उसकी पीड़ा दूर करने के लिए तो कुछ हो सके, कीजिए, और समझाइए कि चोट कोई ज्यादा नहीं, इस तरह रोना-झींकना नहीं चाहिए। किसी ऐसे लड़के की कहानी सुनाइए जो बहुत ज्यादा चोट लग जाने पर भी चुप रहा हो।

आप पर से बालक का भरोसा इस तरह भी उठ सकता है कि आप से किसी बात पर प्रश्न कर और कुछ जानना चाहे और आप उस विषय में कुछ न बताना चाहें, बल्कि गप्पें मार कर उसे टाल देना चाहती हों। आप को चाहिए कि उसे प्रत्येक बात ठीक-ठीक और सच-सच बता दें। परिणाम इस का यह होगा कि जब कभी उसे अधिक जानकारी की आवश्यकता होगी, तो वह दौड़ा हुआ आप के पास आएगा। परन्तु यदि आप पर से उस का विश्वास जाता रहा है, तो वह न तो आप से प्रथम प्रश्न के विषय ही में और कुछ अधिक पूछेगा और न ही फिर बाद में कभी प्रश्न ले कर आप के पास आएगा।

परिपक्वता को पहुंचते-पहुंचते

परिपक्वता को पहुंचते-पहुंचते भी आप के पुत्र-पुत्रियों को आप के लाभप्रद परामर्श की आवश्यकता रहती है। जवान लड़के-लड़कियों में बड़ी सजीवता और उमंग होती है; खूब बोलते-चालते हैं, और इस प्रकार दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, पर इस का परिणाम अच्छा नहीं होता! हो सकता है कि बहुत से लड़के-लड़कियों का ध्येय यह न हो कि कोई हमारी ओर आकर्षित हो; परन्तु उन्हें यह सिखाना उचित ही होगा कि शोर-गुल मचाना और ऊंची आवाज से बोलना शोभनीय नहीं। कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिस से आचरण पर धब्बा आए।

सामाजिक रोग

संसार में व्यापक रूप से फैले हुए सामाजिक रोगों से बचे रहने के लिए अपनी संतान को चेतावनी दीजिए। विवाह आदि के सम्बन्ध में सदा सावधान रहिए, कहीं ऐसा न हो कि आप अपनी पुत्री का हाथ किसी "ऐयाश और आवारा" पुरुष के हाथ में दे दें। हो सकता है कि ऐसे पुरुष की "धनी व उच्च वर्ग" में बड़ी आव-भगत हो, परन्तु यह तो संसार का चलन है, यहां ऊपरी टीप-टाप पर अधिक ध्यान रहता है। हां, हमारी दुनिया की यही रीति है कि लम्पट मनुष्य को समाज में हाथों-हाथ लिया जाता है, परन्तु उन अभागिनी अबलाओं का नाम तक "सभ्य वर्ग" में लिया जाना पाप समझा जाता है, जो इन लम्पट पुरुषों के हाथों पतित हुईं। ईश्वर की आंखों में शुद्धता का एक ही स्तर है; और वह है स्त्री-पुरुषों तथा लड़के-लड़कियों का पवित्र और निर्मल जीवन; इस स्तर में स्वच्छ विचार भी सम्मिलित हैं। गन्दे मन के कारण शरीर भी गन्दा हो जाता है। "यथा विचार, तथा आचार।"

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की रचना की।" फिर एक सुन्दर बाग लगा कर एक पुरुष और एक स्त्री को उस में रक्खा और वहीं उन के रहने-सहने का प्रबन्ध कर दिया। परमेश्वर ने कहा, "आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उस के लिए एक सहायक बनाऊंगा।" अतः अपने असीम आशीर्वाद सहित परमेश्वर ने सर्वप्रथम विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। यह परमेश्वर की योजना थी ताकि उसकी संतान प्रसन्न रहे। उस ने उन्हें रहने के स्थान दिए और प्रत्येक व्यक्ति का कोई-न-कोई प्रेम करने वाला और प्रत्येक माता पिता को प्यारे-प्यारे बच्चे दिए।

पवित्र विवाह की शोभा

लगभग सभी युवक-युवतियाँ विवाह के इच्छुक होते हैं, परन्तु बहुत कम लोग वास्तव में ही इस के लिए तैयार होते हैं। वे विवाह के बाद की जिम्मेदारियों को नहीं समझते। एक-न-एक दिन

हाथ और मन को क्रियाशील बनाने का समुचित प्रशिक्षण देने में जितनी निपुणता तथा सावधानी की आवश्यकता होती है उतनी किसी दूसरे [illegible] में नहीं होती।

हमारी लड़कियां विवाह के योग्य हो जाती हैं, परन्तु कितने माता पिता हैं जो इस बात का निश्चय कर लेते हैं कि वर मानसिक और शारीरिक रूप से शुद्ध है और लड़की के योग्य है।

"हजारों सुन्दर-सुन्दर और भोली-भाली कन्याएं प्रति वर्ष पुरुष के भोग-विलास की वेदी पर बलिदान कर कदम उठाइए, और अपनी बच्चियों का जीवन नष्ट होने से बचाइए।

जब परमेश्वर ने सृष्टि-रचना का कार्य पूर्ण कर लिया, और उस पर दृष्टि डाली तो "देखता क्या है कि वह बहुत ही अच्छा है। अतः परमेश्वर की व्यवस्था के विरुद्ध चलना, परमेश्वर के आमोजित सुख को दुःख से बदल देना है।

"जिस प्रकार महामारी तथा मृत्यु से बचने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार तुम अश्लीलता से बचे रहने का प्रयत्न करो; और यदि दुर्भाग्यवश पवित्र सत्य की उपेक्षा करने लगी हो, तो तुरन्त ईश्वर से प्रार्थना कर के अश्लीलता को अपने मन से निकाल दो। मन और शरीर की शुद्धता पर लिखी हुई उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करो। समाज की भलाई चाहने वाले और सत्य को जानने वाले ऐसे लेखकों की पुस्तकों को पढ़ो, जिन्हों ने सत्य को व्यक्त करते समय अश्लील को पास तक नहीं फटकने दिया हो; जिन पुस्तकों में शुद्धता के रूप में अश्लील हो, उन को हाथ तक न लगाओ। स्वयं अपने आप को पूर्ण रूप से पहचानने और जानने का प्रयत्न करो। तुम्हें अच्छी पुस्तकों में अच्छी सीख मिलेगी। इस बात का संकल्प कर लो कि हम न तो कोई गलत और नीच बात सुनेंगे और न कोई भटका देने वाली पुस्तक पढ़ेंगे"—The Daughter's Danger (दी डॉटर्स-डेंजर पृष्ठ १६-२०)

सी. एल. बॉण्ड Ideals For Juniors नामक पुस्तक में निम्न कहानी लिखते हैं।

"अपने एक धावे के दौरान में जनरल ग्रांट और उनके नीचे काम करने वाले अन्य अधिकारी एक दिन शाम के समय एक किसान के घर में इकट्ठे हो गए थे। अधिकारी लोग आग के आस-पास बैठे थे अपने अपने ठुड्डी अपने सीने पर लगाए, चुप-चाप बैठे थे। अधिकारी लोग कहानी किस्से सुन-सुना रहे थे कि उन में एक अपने विषय की ओर कोई संकेत करता हुआ बोला, 'भई कहानी, तो बढ़िया सुनाऊं, पर यहां कोई महिला तो नहीं ?' कहानी सुनने की उत्सुकता प्रकट करते हुए सभी अधिकारी खिलखिला उठे। तभी जनरल ग्रांट ने अपना सिर उठा कर धीरे से कहा, 'नहीं, यहां महिला तो कोई नहीं है, परन्तु सभी सज्जन पुरुष हैं।' वह अधिकारी अपना सा मुंह लेकर रह गया।"

एक ही मानक

जितना किसी पुरुष का सज्जन होना आवश्यक है, उतना ही किसी स्त्री का भी कुलीन होना जरूरी है। मन की निर्मलता व शुद्धता भी दोनों के लिए समान अंश में आवश्यक है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि माता-पिता दरिद्रता के पंजे से निकलने को हाथ-पांव मारते हैं, परन्तु निकल नहीं पाते और सारे-का-सारा परिवार हताश हो बैठता है; गरीबी के हाथों तंग आ

जाता है। घर में सुन्दर कन्या है, वह विवाह के योग्य हो जाती है और माता-पिता अवसर पाते ही किसी धनी पुरुष के हाथ में उस का हाथ थमा देते हैं; इन परिस्थितियों में उन्हें वर के चरित्र का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। लड़की को धन तो अवश्य प्राप्त हो जाता है, परन्तु वह पति में बहुत अन्य गुणों का अभाव पाती है। कभी-कभी कुछ परिवारों में पैसा-धेला अन्य लोगों के हाथ में होता है, और नव वर-वधू को आशा के अनुसार नहीं मिलता।

इसके विपरीत ऐसा भी होता है कि कहीं-कहीं वर-वधू को पैसे की कमी नहीं होती। पुरुष समय नष्ट करता रहता है कोई काम नहीं करता, और इस प्रकार चरित्र-निर्माण के आवश्यक कार्य की उपेक्षा होती है। इस का फल यह होता है कि थोड़े ही दिनों में नव वधू का स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है और वह अपना सारा सुख खो बैठती है। हम माता-पिता को केवल इतनी ही चेतावनी देंगे कि—सावधान।

माता-पिता को बुद्धि और समझ की आवश्यकता है। एक बुद्धिमत्तापूर्ण पुस्तक कहती है—"परमेश्वर की प्रेरणा उन्हें समझ देती है;" और "यदि तुम में से किसी में बुद्धि की कमी हो, तो वह परमेश्वर से मांगे, जो बिना झिड़के सब को उदारता से देता है, और उसे दी जाएगी।"

कोई चीज लेना या चुराना

ईमानदारी के विषय में सिखाई जाने वाली बातें ऐसी हैं जिन पर अमल होना जरूरी है। कुछ ऐसी भी बातें हैं, जो इस से बहुत पहले कि बच्चा शब्द "चुराने" का अर्थ भी समझे, उसे सिखा देनी चाहिए।

छुटपन में ही उसे यह सीख लेना चाहिए कि अपना क्या है और पराया क्या। जब वह "नहीं, नहीं, यह तुम्हारा नहीं है"—कि आवाज को पहचानने लगेगा, तो दूसरों की चीजों को छूना-छेड़ना छोड़ देगा। यदि माता बच्चे को दूसरों की चीजें न छूने देने में सख्ती बरतेगी, तो शीघ्र ही बच्चे को आज्ञा-पालन की आदत पड जाएगी।

बच्चे में थोड़ी-बहुत समझ आ जाने पर, उस के पास अपनी चीजें होनी चाहिए, और उसे उन्हें अपना समझने का अधिकार भी होना चाहिए। बिना उस से पूछे उस के भाई का उस की चीज नहीं लेनी चाहिए, और न ही उसे अपने भाई की कोई चीज बिना भाई की अनुमति प्राप्त किए लेनी चाहिए। "यह बडे भैया का है;" "यह माता जी का है;" "यह मुन्ने का है;" इस प्रकार के वाक्य बच्चे को अपना और पराया समझने में सहायक होंगे।

नन्हे बच्चे चोरी नहीं करते

किसी ऐसे बच्चे को ध्यान से देखिए जिस को इस प्रकार की बातें अभी सिखाई न गई हों। वह जहां तक समझता है, संसार भर की प्रत्येक वस्तु को अपनी जानता है। प्रकृति उसे उकसाती है—"जो कुछ मिल सके, बस ले लो।" तो यदि बच्चा इसके अनुसार अमल करे, तो उसे दोष कौन दे? निस्संदेह उस पर चोरी का अभियोग नहीं लगाया जा सकता; परन्तु यदि यह प्रवृत्ति रोकी न गई और बालक का उचित मार्गदर्शन न हुआ, तो यही आगे चलकर उस से अपराध कराएगी।

अब बच्चा यह कैसे जाने कि मैं चोरी कर रहा हूं? उसे उदाहरण द्वारा "मेरी" और "तेरी" का अन्तर सिखाना चाहिए। यदि बालक के पास अपनी कोई चीज न हुई, तो उसे अपनी चीजों के खो जाने या नष्ट हो जाने का दुःख कैसे होगा? उस के पास अपनी चीजें होनी चाहिए। इस प्रकार जब कोई दूसरा बालक उस के साथ खेलने आएगा, तो उसे इस का अनुभव होगा। यद्यपि उसे सीखना

हैं। उसे इस बात का अनुभव हो जाता है कि अपनी कमाई से सारी इच्छित वस्तुएं नहीं खरीदी जा सकतीं और पैसा कमाने में खून-पसीना एक करना पड़ता है। अत: वह अपनी किसी भी वस्तु की हानि को अधिक अच्छी तरह समझता है और इस के फलस्वरूप दूसरों की भावनाओं का भी अधिक ध्यान रखता है।

कुछ माता-पिता ऐसे भी होते हैं कि जब उन के बच्चे कोई ऐसी चीज घर में ले आते हैं, जिस के विषय में वे यह नहीं बता सकते कि कहां से और कैसे मिली, तो भी कुछ कहते-सुनते नहीं, बल्कि अपने बच्चों को ऐसी चीजें ले आने के कारण बड़ा चतुर समझते हैं। जिस दृष्टि से माता-पिता इन बातों को देखेंगे, उस के अनुसार ही बच्चों का चरित्र बने-बिगड़ेगा। अत: यदि बच्चा कोई पराई चीज ले आए, तो तुरन्त उसे वापस करा देना चाहिए और माता-पिता इस बात का निश्चित कर लें कि चीज वास्तव में लौटा दी गई है या नहीं। परन्तु मान लीजिए कि बालक ने कोई पराई चीज खा ली या नष्ट कर डाली हो, तब ? तब उसे अपने जेब-खर्च से वह चीज खरीद कर देनी चाहिए। यदि ऐसा किया जाए, तो बच्चा पराई चीज लेते झिझकेगा, और यदि लेगा भी तो बहुत कम।

चुराई हुई चीज का लौटा-देना ईमानदारी को बढ़ावा देता है

माता-पिता द्वारा यह समझाए जाने पर कि दूसरों की चीज बिना आज्ञा लेना या चुराना बहुत ही बुरी बात है, बहुत से बालक अपना अपराध मानते हुए खुशी से चुराई हुई चीज वापस कर देंगे। कुछ परिस्थितियों में यह आवश्यक होगा कि माता या पिता स्वयं बच्चे के साथ चुराई हुई चीज वापस करने जाएं; और साधारण रूप से यही अच्छा भी होगा, क्योंकि हो सकता है कि चीज लौटाते-लौटाते बच्चे की नीयत बदल जाए या उस में साहस ही न रहे। इस के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि जिस की चीज हो, वह इस दशा में न तो बच्चे पर तरस खाए और न उस की बड़ाई करे, और नहीं अपनी चीज वापस लेने से इन्कार करे, क्योंकि ऐसा करने से अनुशासन का अच्छा प्रभाव नष्ट हो जाएगा। यदि सम्भव हो सके, तो यह बात सब से अच्छी होगी कि जिस की चीज हो, उसे पहले ही से सूचित कर दिया जाए कि जब बालक चुराई हुई चीज लौटाने आए तो वह कुछ भी न कहे क्योंकि इस से बालक अपने अपराध को साधारण बात समझेगा।

प्रलोभनकारी वस्तुओं को बच्चों से दूर ही रखना चाहिए। कभी-कभी बच्चे माता या पिता के बटुए में से चुपके से पैसे निकाल लेते हैं। मिठाइयां और फल भी बच्चों की नीयत डिगा सकते हैं। पैसे बटुए में से या वैसे ही इधर-उधर पड़े नहीं छोड़ने चाहिए जिस से ऐसा न हो कि बच्चा प्रलोभन का आखेट हो जाए। घर में बच्चों को खाने-पीने की चीजों और मिठाइयों आदि के विषय में भी कड़े नियम मालूम होने चाहिए। इस के अतिरिक्त बच्चों का हर समय मुंह चलाते रहना भी उचित नहीं, भोजन का समय नियत होना चाहिए। इस सिद्धांत पर दृढ़ता से अमल करने से चोरी की कोई सम्भावना न रहेगी।

सावधान—कोई ऐसी बात मुंह से न निकल जाए जिस का परिणाम उलटा हो !

कभी-कभी माता-पिता बिना सोचे-समझे ऐसी बात मुह से निकाल बैठते हैं कि बालक यही समझता है कि इन्हें मेरी नीयत पर शक है। मां बाजार से आए हुए ताजा फलों की टोकरी कमरे में मेज पर रक्खी छोड़ कर बाहर बगीचे में जाती है और जाते-जाते कहती है—"देखो, गोपाल, यदि तुम ने इन में से एक भी खाया, तो मैं आकर तुम्हें बहुत पीटूंगी।" एक अच्छे-भले लड़के के लिए यह एक बुरा सुझाव सिद्ध होता है। यदि मा ऐसा न कहती, तो शायद लड़के को उन फलों को छूने का ध्यान तक भी न आता। परन्तु इस परिस्थिति में उस के मन में आ ही जाता है कि एक फल खाकर तो देखूं। वह खा लेता है; और शेष फलों को इस प्रकार लगा रख देता है कि एक फल की कमी दिखाई तक नहीं देती यदि मा ने यह सोचा था कि फलों को देख कर गोपाल की नीयत खराब हो जाएगी, तो उसे चाहिए था कि कहीं ऐसी जगह उन्हें उठा कर रख देती जहा गोपाल की नजर ही न पड़ती, और इन के विषय में कुछ भी न कहती।

बच्चों को फलों की चोरी करने का साधन

पास-पड़ोस का बाग प्रायः लड़कों को बहुत लुभाता रहता है। यदि किसी लड़के का एक ही अपना फल का पेड़ हो, और वह यह जान पाए कि जमीन तैयार करने, बीज बोने और बाग की देख-भाल करने में कितना समय लगता है, कितना परिश्रम करना पड़ता है, फिर अंकुर को निकलते, बढ़ते और पेड बन जाने के बाद उसे फूलते-फलते देखे, और प्रकृति के सहयोग से स्वादिष्ट फल उत्पन्न कर लेने की सफलता पर उस का हृदय प्रसन्नता से नाच उठे, तो वह पराए बाग का प्रलोभन छोड देगा। यदि बाग न हो, तो एक पेड़ ही काफी है।

हमें देख-भाल रखनी चाहिए

इस प्रसंग में देख-भाल रखने का अर्थ जासूसी करना या गुप्त रूप से दोष ढूंढना नहीं है, बल्कि यह देखते रहना है कि बालक का हृदय व मस्तिष्क उस के मार्ग में अनिवार्य रूप से आनेवाले प्रलोभनों से साहसपूर्वक संघर्ष करने को तैयार रहे और हम भी इस बात के लिए तत्पर रहें कि जब किसी प्रलोभन से बालक का सामना हो, तो उस पर विजय प्राप्त करने में उस की सहायता करें। छोटी ही अवस्था से उचित आदर्शों का निर्माण आरम्भ कर दीजिए। आदर्श यहीं से टपक नहीं पड़ते, बनाए जाते हैं। इस बात का ध्यान रखिए कि आप जो कुछ बालक से या किसी अन्य व्यक्ति से कहें, उसे कर भी दिखाएं। "कहने से करना अधिक महत्व रखता है।"

और भी अन्य प्रकार की चोरियां होती हैं। चोरी ! कैसा घृणास्पद शब्द है। इतना घृणित कि बहुत से माता-पिता अपने बच्चों को इस का अर्थ तक नहीं समझाते। एक बार एक जवान चोर

श्री दौलत राम एक मकान बनवाना चाहते हैं। कई ठेकेदार ठेका लेने आए हैं। श्री दौलत राम अपनी शर्तें पेश करते हैं; एक शर्त यह भी है कि सारी इमारत में बढ़िया-से-बढ़िया मसाला लगाया जाए। ठेकेदार शर्तें मंजूर करते हुए अपनी-अपनी बोली बोलते हैं। गुलाब सिंह ठेकेदार की बोली स्वीकार कर ली जाती है। काम शुरू हो जाता है। गुलाब सिंह ठेके की शर्तों पर सोच-विचार करता है और अपने मन में कहता है—"मेरी बोली सब से कम रही, यदि मैं ने सारी इमारत में बढ़िया मसाला लगा दिया, तो मुझे कुछ बचता नहीं। इसलिए जहां-जहां दिखाई न दे, वहां-वहां घटिया से काम चल जाएगा; और फिर दौलत राम को पता ही क्या चलेगा, उसके जीते-जी तो यह घटिया मसाला भी कहीं जाने से रहा, और अपने कुछ अधिक पैसे बन जाएंगे।" क्या गुलाब सिंह पराए माल पर नीयत बिगाड़ रहा है? उसने तो अपने मुंह से बोली थी, अपने मुंह से श्री दौलत राम की शर्तें मानी थीं और बढ़िया-से-बढ़िया मसाला लगाने का वचन दिया था। क्या वह चोरी कर रहा है?

समय की चोरी

गुलाब सिंह का लड़का लक्ष्मण श्री हीरा लाल के कार्यालय में आशुलिपिक का काम करता है। कार्यालय में एक मुनीम भी है। किसी-न-किसी काम से श्री हीरालाल को कई-कई घंटे बाहर रहना पड़ता है। लक्ष्मण और मुनीम बहुत सा समय अपनी निजी बातें करने में उड़ा देते हैं। लक्ष्मण को प्रति सप्ताह अड़तालीस घंटे काम के हिसाब से महीने में सौ रुपये मिलते हैं। वह सप्ताह में छ: दिन काम करता है और इस में भी शनिवार को केवल आधे दिन काम करता है। मोटे हिसाब से वह प्रति दिन एक घंटा इधर-उधर की बातों में उड़ा देता है—उदाहरणार्थ कोई मजेदार चीज ही की बिना काम किए मिलते हैं, परन्तु उसे इतना न सूझा कि इतना पैसा हराम का है, मैं बेईमानी कर रहा हूं। वास्तव में उसे ईमानदारी सिखाई ही नहीं गई थी, और यदि उस का पिता उसे कुछ सिखाने बैठता, तो उसे स्वयं लज्जित होना पड़ता।

पराई चीज को नष्ट करना

अब पराई चीज को नष्ट करने की बात को ले लीजिए। कदाचित् साधारण रूप से बच्चे अपने घर की चीजों के अतिरिक्त पराई खिड़कियां और पराए पेड़ों की टहनियां तोड़ डालते हैं, या कभी-कभी पराई पुस्तक को नष्ट कर देते हैं, या पराई पुस्तक को कहीं बाहर छोड़ आते हैं।

तो किया क्या जाए? यदि किसी और ने कुछ न किया, तो चीज वाले को स्वयं अपनी बिगड़ी हुई चीज को सुधरवाने में पैसे खर्च करने पड़ेंगे। और इस प्रकार पराए पैसे खर्च होंगे। जिस ने कोई नुकसान किया हो उसी को उसे पूरा भी करना चाहिए, उस के माता-पिता को पैसा न भरना पड़े। यदि माता-पिता ने क्षति-पूर्ति की, बालक को अपनी गलती मालूम न होगी। अत: बालक की भलाई के हेतु, यह दण्ड उसी को भुगतने दीजिए। जब उसे क्षति-पूर्ति करनी पड़ेगी तो उसे पैसे-पैसे का मूल्य ज्ञात हो जाएगा, और यही कुछ उसे सीखना है।

Suraj N. Sharma

"बैंक से और रुपया निकालेंगे; तू अपने घरवालों से कह देना कि मुझे और सुखराम को मद्रास में बहुत ही बढ़िया काम मिल गया है, फिर क्या है कल शाम की गाड़ी से काश्मीर चलेंगे," सुखराम ने सुझाव पेश किया।

"भई, अपना तो यह विचार है कि वेंकट स्वामी के पैसे में से अब और कुछ न लिया जाए," मानू ने चेतावनी दी, "कौन जाने कहीं फंस गए तो बड़ी बुरी होगी और यह अच्छी बात नहीं है।"

"अरे नहीं, फंसते-वंसते नहीं," सुखराम ने पूर्ण आश्वासन देते हुए कहा, "और सच तो यह है कि हम किसी और का पैसा नहीं लेते, अपना ही लेते हैं, वेंकट स्वामी के पैसे में अपना भी तो हिस्सा है, आखिर यह कहां का न्याय है कि उस के पास इतना पैसा हो? यह उचित सी बात नहीं, सभी लोगों के पास बराबर पैसा होना चाहिये; यदि मैं कोई राजनीतिक नेता होता, तो मैं यह कर दिखाता कि समाज में सब समान हों, न कोई अमीर हो और न कोई गरीब।"

मानू का मन एक बार फिर डांवांडोल होने लगा। उसके मन में जो ग्लानि होने लगी थी, जो भय पैदा होने लगा था, वह सब सुखराम के अन्तिम वाक्य की रौ में बह गया। सोचने लगा कि सुखराम बात तो पते की कह रहा है।

घर पहुंचे तो भांति-भांति के प्रश्न पूछे जाने लगे, और सभी लोग क्या घर के और क्या पड़ोस के, कुछ विचित्र प्रकार से दोनों का मुंह ताकने लगे। दोनों अपने को अपराधी अनुभव करने लगे। उन्हें भय लगने लगा। परन्तु अपने निश्चय से वे न टले। बैंक को जाते समय रास्ते में वेंकट स्वामी से मुठभेड़ हो गई, पर दोनों लड़कों ने उस की ओर से मुंह मोड़ लिये और आगे बढ़ गये, परन्तु मन में सोचने